…वता-सन्देश

लेखक

डॉ० रामनारायण मिश्र

रीडर

गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ

इलाहाबाद

प्रकाशक

सुभद्रा प्रकाशन

पिड़रा, देवरिया (उ० प्र०)
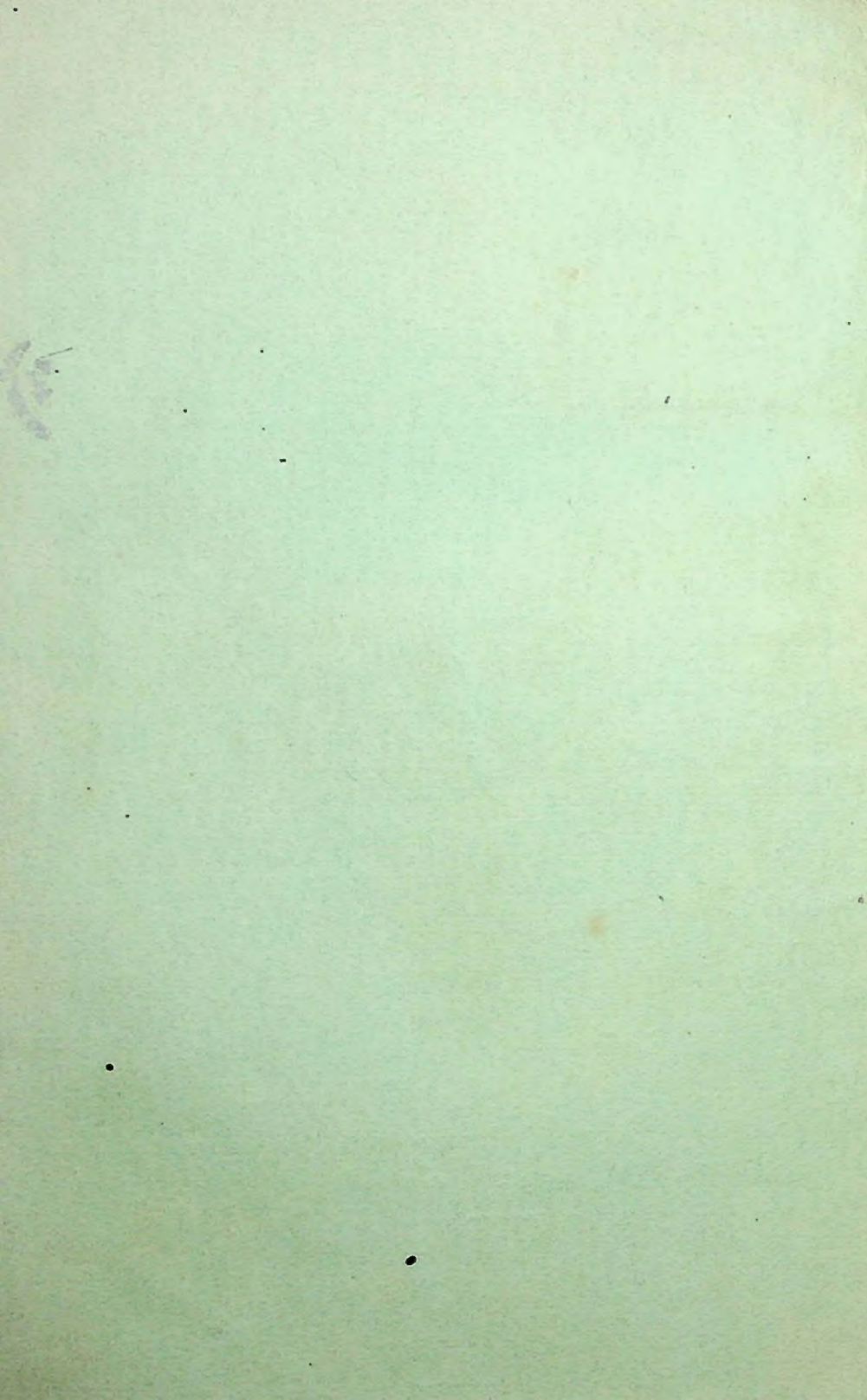
मानवता-सन्देश

लेखक

डॉ० रामनारायण मिश्र

रीडर

गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ

आजाद पार्क, इलाहाबाद

प्रकाशक

सुभद्रा प्रकाशन

रामनगर कॉलोनी, रामगुलाम टोला

पिड़रा, देवरिया (उ० प्र०)

● प्रथम संस्करण :
विजया दशमी, 1992

● प्रकाशक :
सुभद्रा प्रकाशन

● मूल्य :
दस रुपये

● मुद्रक :
अरविन्द प्रिण्टर्स
20-डी, बेली रोड, इलाहाबाद
फोन नं॰ 640782 तथा 640113

भूमिका

आचार्य प्रवर डॉ० रामनारायण मिश्र, रीडर, श्रीगंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, चन्द्रशेखर आजाद पार्क, इलाहाबाद द्वारा लिखित मानवता सन्देश नामक ग्रन्थ रत्न एक अत्यन्त सामयिक, उपयोगी एवं सच्चरित्र निर्माण के लिए अनुपम प्रेरणा स्रोत सिद्ध होगा। इस लघुकाय ग्रन्थगोस्पदीकृत परिधि में समस्त वेद शास्त्र आदि रूप सनातनोदधि से प्रकट मानो अमृताञ्जन व सुधा बिन्दु को संस्थापित करने का पूर्ण सार्थक प्रयास किया गया है। इस ग्रन्थ के माध्यम से हरवर्ग के लोगों को एक सही व सरल सन्मार्ग का सद्यः ज्ञान होगा, चाहे अध्यापक हो छात्र हो, राजनीतिज्ञ हो, शासक हो, शास्य हो, व्यवसायी हो, कृषक हो, डाक्टर हो, वकील हो, हर समाज के हरक्षेत्र के लिए अत्यन्त उपयोगी एवं पूरे राष्ट्र को परस्पर प्रेमभाव एकता भ्रातृत्व भावना सहिष्णुता कर्तव्यनिष्ठा सत्यनिष्ठा भगवान् व देवी देवताओं तथा समस्त प्राणी के प्रति सच्ची सेवा-भावना परोपकार एवं परमत्याग व राष्ट्र सेवा समाज सेवा रूप तपश्चर्या का दिशा निर्देश इस लघु ग्रन्थ में ग्रथित कर लेखक आचार्य ने अति-उत्तम कार्य किया है। आशा है वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना सभी प्राणी में पैदा करने में यह ग्रन्थ अवश्य सहायक सिद्ध होगा। आतंक भावना दूर होगी। सभी का मंगल होगा, यही भगवान् से सदा प्रार्थना है कि यह ग्रन्थ रत्न एक मन्त्र संहिता का कार्य करेगा, इससे शिक्षण संस्थायें उपकृत होंगी। शिक्षार्थी वर्ग उपकृत होगा। भगवान् से यह भी प्रार्थना है कि लेखक आचार्य को ऐसे ही उत्साहपूर्ण सेवा करने की शक्ति व चिरायुष्य प्रदान् करें। हरि ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॐ

राम प्रकाश
इंस्पेक्टर जनरल पुलिस
जम्मू एण्ड काश्मीर

प्ररोचना

प्रेरणा :

संयोगवश विभिन्न सामाजिक कार्यक्रमों एवं उत्सवों में भाग लेने का अवसर प्राप्त होता रहा। प्रयास यही किया जाता रहा कि अपनी भारतीय संस्कृति-सभ्यता की सुरक्षा में समाज को सोत्साह प्रेरित किया जाय। भगवत्कृपावश जहाँ भी ऐसे सेवा करने का अवसर मिला सभी सज्जनवृन्द चाहे वे विभागीय अधिकारी हों शिक्षक हों, सामान्य नागरिक हों सभी लोगों ने श्रद्धा व विनम्रतावश शास्त्रीय मर्यादाओं की रक्षा में तदनुसार आचरण करने में अपनी प्रतिबद्धता व्यक्त की तथा प्रतिज्ञा भी की कि अपनी मूल सनातन संस्कृति की रक्षा की जायेगी जिससे भारतवर्ष में ही नहीं सभी देशों में देशवासियों की भारतीय संस्कृति के सन्देश से परस्पर भाई-चारा, प्रेम-व्यवहार की सुदृढ़ नींव पड़ेगी। एक दूसरे के सुख-दुःख में हृदय से सहयोगी बनेगा, यही भारतीय संस्कृति की पवित्र दिशा है। यही भारतीय मनीषा है जो वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना को प्रवाहित कर जन-मानस को आप्लावित किये बिना नहीं रहती। इसी से ही मानवता की भूमिका पुष्ट होती है। प्रत्येक मनुष्य सही मानव बन सकता है अन्यथा आसुरी प्रवृत्तियों के कारण दानव बनने में देर नहीं होगी। परन्तु भारतीय शास्त्रों का विस्तार तथा काठिन्यपूर्ण प्रक्रिया सामान्य के लिए, व्यस्त प्राणी के लिए कैसे सुलभ हो सकती है।

कई बार बम्बई, पुणे, यू० पी०, बिहार तथा जम्मू में प्रायः आरमी के एयरफोर्स के प्रति यूनिट में कभी कर्नल कभी ब्रिगेडियर कभी किसी और भी विशेष अधिकारी द्वारा विशेष सभा आयोजन में काफी भीड़-भाड़ वाले समारोहों में ऐसे भी अवसर प्राप्त हुए कि भारतीय संस्कृति एवं विभिन्न सम्प्रदाय, मजहब व धर्म के सम्बन्ध में भाग लेना पड़ा।

कभी अति कटु, कभी विनम्रता से कुतर्क-सत्तर्क भी विभिन्न बुद्धि-जीवी महानुभावों द्वारा, अधिकारियों द्वारा, समाजसेवियों द्वारा भी उठाये जाते रहे जिनका पूर्णतः आत्मीय भाव से राष्ट्रहित में, जनहित में उचित प्रमाण एवं युक्तियों द्वारा समाधान किया जाता रहा है। उन अवसरों पर अनेक बार विभिन्न विचारशील महानुभावों ने कई बार आग्रह किया कि धर्म-शास्त्र-पुराण-वेदों के अध्ययन-करने का सभी को अवसर सुलभ नहीं हो सकता, न तो संस्कृत भाषा में लिखे गये ग्रन्थ भी सभी के लिए सम्भव हैं जो संस्कृत नहीं जानते हैं तथा विभिन्न धर्मशास्त्रों, पुराणों आदि का धार्मिक-नैतिक जो भी सामयिक सन्देश हैं वह भी इतना विस्तृत व विवादास्पद हैं कि किसे माना जाय, किसे त्यागा जाय ? आदि का निर्णय भी सबसे सम्भव नहीं है, हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई भारतवर्ष में सभी भाई-चारे से ही रहते हैं। सभी के लिए अत्यन्त उपयोगी व सरल भाषा तथा संक्षेप में सामान्यतया मानवता की परख हेतु व प्रेरणाप्रद ग्रन्थ आवश्यक है जिससे सभी को पारस्परिक प्रेम, सद्-व्यवहार, सदाचरण एवं सुख-दुःख में सहानुभूति-सहयोग की शिक्षा मिले, उसे अवश्य लिखा जाय। सम्भव हो तो यदि वह ग्रन्थ उचित दिशा निर्देश दे सके तो उसे चरित्र-निर्माण की दृष्टि से हाई स्कूल तक या किसी भी स्नातक कक्षा में पाठ्यग्रन्थ रूप में स्वीकृत कराया जाय जिससे बाल काल से ही सभी सच्चरित्र व कर्तव्यपरायण व भाई-चारे का सद्भावपूर्ण भावना से पालन कर सकें।

इन्हीं उक्त प्रेरणाओं के आधार पर ही मानवता सन्देश नामक लघु ग्रन्थ को लिखने की प्रवृत्ति हुई। विश्वास है, इस छोटी सेवा से समाज का बहुविध हित होगा।

निवेदक

रामनारायण मिश्र

संस्तुति

डॉ० रामनारायण मिश्र द्वारा विरचित मानवता सन्देश के कुछ अंशों को देखने का अवसर मिला। मानवीय संस्कृति की आधार-शिला सद्‌गुणों पर आधारित है। व्यक्ति जहाँ सद्‌विचार एवं सदाचरण के माध्यम से सर्वतोमुखी अभ्युदय को प्राप्त हो सकता है वहाँ समष्टिरूप समाज के लिए भी सुख-शान्ति और समृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है।

जब व्यक्ति मानवीय सद्‌गुणों से रहित होकर आसुरी भावों एवं दुर्गुणों को स्वीकार कर लेता है तो वह व्यक्ति पूरे समाज के लिए कष्टकारक तथा भारस्वरूप होता है।

मनुष्य में सद्‌गुणों का समावेश सत्संगति, सदाचार तथा श्रेष्ठ पुरुषों के बताये हुए मार्गों के अनुसरण से होता है। इस कार्य के लिए सम्प्रदाय, धर्म, मतमतान्तरों की विभिन्नता अवरोधक नहीं होती। व्यक्ति किसी भी धर्म का, किसी भी मत का अथवा किसी भी सम्प्रदाय का अनुयायी हो, परन्तु मानवीय सद्‌गुण सभी सम्प्रदायों तथा धर्मों में एक समान है। सदाचार हर अवस्था में श्रेयस्कर है अतः ग्राह्य है। कदाचार प्रत्येक अवस्था में हानिकारक है, अतः त्याज्य है।

प्रत्येक व्यक्ति को त्याज्य एवं ग्राह्य की जानकारी अत्यावश्यक है तभी वह जो ग्राह्य है उसे ग्रहण कर अपने जीवन को अभ्युदय की दिशा में ले जा सकता है और जो त्याज्य है उसे छोड़ कर श्रेष्ठ व्यक्ति बन सकता है।

डॉ० मिश्र ने अपने ग्रन्थ में २० मर्यादाओं का विस्तृत वर्णन किया है। मानवता के महाव्रत की १० निषेधात्मक मर्यादाएं हैं तथा १० विधानात्मक मर्यादाएँ हैं। इन सभी निषेधात्मक तथा विधानात्मक मर्यादाओं का ऐसा सुन्दर, संकेतितरूप में वर्णन अन्य ग्रन्थों में कम ही देखने को उपलब्ध होता है।

डॉ० मिश्र ने धर्म के स्वरूप की सुन्दर तथा व्यावहारिक व्याख्या प्रस्तुत की है। इनके द्वारा प्रतिपादित धर्म, सम्प्रदाय, मत, जाति की सीमाओं से परे हैं। कोई भी व्यक्ति इनके द्वारा प्रतिपादित मानवीय सद्गुणों को स्वीकार कर सकता है और अपने जीवन को सार्थक बनाते हुए समाज के लिए स्वयं को उपयोगी तथा लाभप्रद सिद्ध कर सकता है।

आशा है, डॉ० मिश्र द्वारा लिखित मानवता सन्देश नामक पुस्तक निश्चित रूप से भौतिकतावादी सभ्यता की ओर भागने वाले भारतीयों के लिए सन्देशवाहक के रूप में सिद्ध होगी तथा उन्हें मानवीय सद्गुणों के विकास हेतु प्रेरणादायक बन सकेगी।

डॉ० वेद पति मिश्र
अपर शिक्षा निदेशक (माध्यमिक)
उ० प्र०, इलाहाबाद

विषय-सूची

क्रम संख्या		पृष्ठ संख्या
१.	विषय प्रवेश प्रारम्भ	१–१२
२.	मानवता महाव्रत की दश निषेधात्मक व दश विधानात्मक मर्यादाओं का विभिन्न सम्प्रदाय ग्रन्थानुसार अर्थ	१२–२९
३.	मानवता का स्वरूप प्रमाण-मनु के सनुसार	२९–३०
४.	अथर्ववेद के तथा ऋग्-सामवेद के वचन प्रमाण	३०–३१
५.	रामायण के आधार पर विविध चरित्रों का प्रदर्शन	३२–४०
६.	भगवान् राम-कृष्ण अवतार द्वारा एवं विविध सद्गुरुओं, आचार्यों, महापुरुषों द्वारा मंगलमय सन्देश	४०–४१
७.	आचार्यों के आदेशानुसार भगवान् शंकर व माता पार्वती को निमित्त मानकर अध्यात्म विचार व यथार्थ ज्ञान से अज्ञान निवारण	४१–४३
८.	मन की एकाग्रता के लिए प्रयत्नस्वरूप विचार	४३–४७
९.	महाभारत सूक्ति मानवता व्रत में यथार्थं	४७–४९
१०.	अन्य सत् शास्त्रों द्वारा निर्देश से श्री भगवान् राम का भ्रातृ-मातृ-पत्नी प्रेम का निरूपण	४९–५१

क्रम संख्या		पृष्ठ संख्या
११.	क्रियमाण कर्म का विचार व फल	५१–५४
१२.	परमात्मा तथा जीवात्मा का सम्बन्ध व स्वरूप	५४–५७
१३.	मानवता महाव्रत में धर्म का स्वरूप	५७–५६
१४.	गीताशास्त्र हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख-ईसाई सभी के लिए उपयोगी	५६–६३
१५.	अहिंसा आदि विविध सद्गुणों का निरूपण	६३–६६

मानवता-सन्देश

भारतीय संस्कृति को बचाइये। यह मानव-जीवन की संजीवनी है। यह आर्यसंस्कृति अब खतरे में है, वह आर्यसंस्कृति जिसका प्राण परस्पर में पूर्णप्रेम है, जिसका शरीर सत्य, श्रद्धा, दया, पवित्रता और परोपकार के पाँच तत्वों से बना है। सभी भारत-वासियों का यह पुनीत कर्तव्य है कि इसकी प्राणपण से सुरक्षा करें। इसमें किसी विशेष जाति या विशेष धर्म का प्रतिबन्ध नहीं है।

विश्व के चिन्तनशील महामनीषियों, विद्वानों का यह अनुभव-गम्य सन्देश है कि व्यष्टि (प्राणी) और समष्टि (ब्रह्माण्ड) का परस्पर कार्य-करण-भाव से सनातन अभेद्य सम्बन्ध है। अतः समष्टि के अधीन या समष्टिगत शक्तियों के सम-विषम एवं हलन-चलन, लहर-तरंग, सघन-विरल रूप प्रभाव व्यष्टिगत (प्राणिमात्रगत) भावों पर अनिवार्य रूप से पड़ना स्वाभाविक है। इसलिए इसी तरह व्यष्टिगत सम-विषम भावों का परिणाम भी समष्टिगत शक्तियों पर पड़ता रहता है यह भी नैसर्गिक है। इस प्रकार व्यष्टि एवं समष्टि इन दोनों के अच्छे एवं बुरे भावों का संक्रमण स्वा-भाविक रूप से होता रहता है और होता रहेगा भी।

इन सभी तथ्यों को सिद्ध महापुरुषों, ऋषि-मुनियों ने जो अनुभव किया है उसमें संहिता-वचन भी प्रमाण है, जेसा कि पाञ्चरात्रान्त-र्गत अहिर्बुध्नसंहिता में कहा गया है :

येन कालेन सा विद्या प्रकृतिर्मूल-संज्ञिता।
सस्यादि - सृष्टये धेनुरभवन्मेघरूपिणी॥
कालेन तावता सा तु चिकीर्ष्ये प्रति सञ्चरे।
अधेनुर्नीरसा शुष्का भवत्यव्यक्तसंज्ञिता॥

इसका तात्पर्य यह है कि मनुष्य के अच्छे-बुरे भावों एवं कर्मों का शुभ-अशुभ परिणाम पूरे ब्रह्माण्ड पर अनिवार्य रूप से पड़ता है। मानव-समाज द्वारा वाणी-व्यवहार (शब्द-प्रयोग) तथा आचरण में लाये गये दया, क्षमा, शौच, पवित्रता, अनसूया, मैत्री, त्याग, सन्तोष, संयम, विनय, नीति, सदाचार, आस्तिकता, धर्म का आचरण आदि सभी सद्विचारों का और कार्यों का शुभ परिणाम जब प्रकृति पर होता है, तब वह प्रकृति माता कामधेनु बन कर केवल मानव-समाज के लिए ही नहीं, अपितु प्राणिमात्र के लिए सुखद, सरस, शान्त एवं दयामयी सर्वकामधुक् होकर सर्वतोमुखी अभ्युदय की पूर्ण वर्षा करती है। जिससे व्यष्टि-समष्टि (पूर्ण ब्रह्माण्ड) आप्लावित होकर निरन्तर सुखी तथा परमसमृद्ध बना रहता है।

जब कभी भी मानव प्राणी मानवता-विहीन और अज्ञान के वशीभूत होकर असंयमित, अनियन्त्रित, काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, मद, मात्सर्य, प्राणिद्रोह, विश्व-द्रोह, देश-द्रोह, अवहेलना, राग, द्वेष, असूया, स्पर्धा, दम्भ और नास्तिकता आदि आसुरी भावों एवं दुर्गुणों का आचरण करता है, तब प्रकृति (ब्रह्माण्ड) पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है, यह स्वाभाविक ही है। उसी प्रभाव से वह प्रकृति माता शुष्क (नीरस) बनकर दुःख, दारिद्र्य, अशान्ति, अवनति, तथा सर्वतोभावेन विनाश को उपस्थित करती है, जिससे पूरा का पूरा राष्ट्र व विश्व अशान्त एवं दुःखी बन जाता है।

इसी लिए विश्व के प्रामाणिक पुरुषों ने एकमत और एकस्वर हो मानव-धर्म-रक्षा को प्राथमिक आवश्यकता का सदैव अनुभव कर उसके आचरण का उपदेश किया है और स्वयं उन महापुरुषों ने उस मानवता-धर्म का पालन किया है, अपने आचरण में उसे प्रस्तुत किया है।

मानव-धर्म संहिता के आचरण में उक्त आसुरी सम्पत्ति के बढ़ने और फैलने पर जब-जब हीनता प्रकट हुई है, तब-तब इसका प्रतिविधान भी उन महामानवों द्वारा होता रहा है, जिससे दानवता अभिभूत होती रही है। बड़ा ही दुर्भाग्य है कि वर्तमान समय में देश

काल की अधिक विषमता के कारण मानव-धर्म की नींव हिलकर क्षीणप्राय हो चली है, इसका अनुभव विश्व के मनीषियों ने किया है, इसमें सन्देह नहीं।

सभी चिन्तशील मनीषि क्या कर रहे हैं ? यह बात बिल्कुल सत्य प्रतीत हो रही है कि यदि समय रहते इस पर ध्यान न दिया गया, शासन एवं शिक्षा-जगत् में इनका मूल्यांकन कर सदाचार और मानव-धर्म संहिता की प्रतिष्ठा न की गयी, तो देश बिखर जायेगा। देश हजारों वर्ष पीछे चला जायेगा। जिस प्रकार दानवता को वृद्धि हो रही है उसे देखकर भावी विश्व की अनिष्ट की कल्पना से सबको केवल संत्रस्त ही नहीं होना पड़ेगा, अपितु ऐसे अन्धकार के गर्त में समा जाना पड़ेगा जहाँ से निकलना कठिन हो जायेगा।

महर्षि चरक ने जननाशक कुप्रवृत्तियों का वर्णन करते हुये यह स्पष्ट किया है कि अधर्म और अनीति के आचरण से विक्षुब्ध प्रकृति व्यष्टि एवं समष्टि (ब्रह्माण्ड) शस्त्रक्रान्ति और प्राकृति कोप द्वारा विश्व-संहार में प्रवृत्त हो जाती है। चरक का यह कथन आज सत्य सिद्ध होता दिखायी पड़ रहा है।

आज इस तथ्य को सभी जान रहे हैं और मान रहे हैं कि आज का संसार शस्त्र-क्रान्ति एवं प्रकृति-प्रकोप के भयों से कितना प्रताड़ित और प्रपीड़ित हो रहा है। इससे यह प्रमाणित है कि आज के मानव ने अपने अमूल्य एवं स्वाभाविक संस्कार-सम्पदा का अनादर-पूर्वक परित्याग कर कुत्सित आचरणों एवं कुप्रवृत्तियों एवं कुत्सित भावनाओं से प्रकृति देवी (द्यावापृथिवी) को भी सन्तापित और विक्षुब्ध कर दिया है। प्रकृति-क्षोभ के ही फलस्वरूप आज विश्व में भूकम्प, हिमपात, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, बाढ़, महामारी तथा विनाशक शस्त्रास्त्र निर्माण, विप्लव, ऋतु विपर्यय, दुर्भिक्ष, कृषि-विनाश तथा पाँच भौतिक विकार आदि अत्यन्त भयावह अमंगल-कारी तत्व का फैलाव हो रहा है, जिससे विश्व का उद्विग्न एवं अशान्त होना स्वाभविक है।

महर्षि चरक का भी वचन है कि जब मानव दैवी गुणों का अनादर करता है, उसका संचय नहीं करता है, नास्तिकता एवं अहंकार से युक्त हो जाता है, तब वहाँ अनियंत्रित अर्थ, काम का प्रसार एवं शक्ति भावना तथा स्वार्थान्धता का साम्राज्य हो जाता है। उसी कारण राष्ट्र में जातीय विवाद, व्यक्तिगत स्वार्थवादिता, अहंमन्यता, पार्थक्यवाद, वर्गवाद, भाषाभेदवाद, देशद्रोह, समाजद्रोह, प्राणिपीड़न, हिंसा आदि विनाशक और विभेदक प्रवृत्तियाँ फैल जाती हैं और मायापिशाचिनी बन कर सभी को ग्रसने लगती है। नास्तिक प्राणी के हृदय से अलौकिक, अचिन्त्य, सूक्ष्म चेतना शक्ति (परमेश्वरनिष्ठा) और ईश्वर का भय निकल जाता है। इसी कारण वह स्वयं को भयरहित मान कर उपर्युक्त असत्कारणों में असत्कार्यों में प्रवृत्त होकर अपने स्वरूप, धर्म एवं कर्तव्य से च्युत हो जाता है। उसके ज्ञान-विज्ञान आदि सब साधन अनियंत्रित अर्थ-काम की उपासना में ही लगे रहते हैं और वह व्यक्तिगत तथा वर्गगत हितों की सीमा से आगे जाता ही नहीं।

ध्यान देने पर यही सत्य सिद्ध होता है कि हमारे जो कर्तव्य हैं उनमें अधिकांश में इस समय प्रायः अधिकांश लोग अपने कर्तव्य-पालन में न तो रुचि रखते हैं और न तत्पर हैं। यद्यपि सभी अपनी उन्नति तो चाहते हैं और यथाशक्य चेष्टा भी करते हैं, परन्तु विचार करने पर ऐसे अनेक हेतु दृष्टिगोचर होते हैं जिनके कारण वे अपेक्षित यथासाध्य प्रयत्न नहीं कर सकते, क्योंकि वे किंकर्तव्यविमूढ होकर उन्नति और सत्य के अनुकूल पथ से गिर जाते हैं। अतएव सबसे पहले विचारणीय विषय यह है कि मनुष्य का कर्तव्य क्या है ? उसके पालन के लिए मनुष्य को किस प्रकार चेष्टा करनी चाहिये ? और इच्छा करने पर भी मनुष्य कौन सी बाधाओं के कारण सही रूप में यथासाध्य चेष्टा नहीं कर पाता है।

उपर्युक्त प्रश्नों के समाधान यहाँ प्रस्तुत किया जायेगा। प्रथमतः कुप्रवृत्तियों एवं प्रकृतिकोप के विषय में चरक मुनि के वचनों को यहाँ उद्धृत करना आवश्यक है :

'अथ खलु भगवन् कुतो मूलमेषां वायुवादीनां वैगुण्यमुत्पद्यते.....। तमुवाच भगवानात्रेयः—सर्वेषामपि अग्निवेश वाय्वादीनां यद् वैगुण्यमुत्पद्यते तस्य मूलमधर्मः तन्मूलञ्चासत्कर्म, तयोर्योनिः प्रज्ञापराध एव। तद् यथा वै देशनगर-निगम-जनपद-पधानाधर्ममुत्क्रम्य अधर्मेण प्रजां प्रवर्तयन्ति तदा आश्रितोपाश्रिताः पौर-जानपदाः व्यवहारोपजीविनश्च तमधर्ममभिवर्धयन्ति, ततः सोऽधर्मः प्रसभं धर्ममन्तर्धत्ते। ततस्तेऽन्तर्हितधर्माणो देवताभिरपि त्यज्यन्ते। तथाऽन्तर्हितधर्मणामधर्मप्रधानानामपक्रान्तदेवतानामृतवो व्यापद्यन्ते। तेन नापो यथाकालं देवो वर्षति, न वा वर्षति, विकृतं वा वर्षति, वाता न सम्यगभिवान्ति, क्षितिर्व्यापद्यते, सलिलान्युपशुण्ठ्यन्ति, औषधयः स्वभावं परिहाय आपद्यन्ते विकृतिम्। तत उध्वंसन्ते जनपदाः स्पर्शाभ्यवहार्यदोषात् तथा शस्त्रप्रभवस्यापि जनपदोध्वंसस्याधर्म एव हेतुर्भवति। येऽतिवृद्धलोभरोषमोहमानास्ते दुर्बलान् अवमत्यात्मत्वजनपरोपघाताय शस्त्रेण परस्परमभिक्रामन्ति परान् वाभिक्रामन्ति परैर्वाभिक्राम्यन्ते।

(चरकसंहिता, विमानस्थान, अध्याय ३)

इनका आशय पूर्व में ही व्यक्त किया जा चुका है। सारांश यही है कि मानवता का परित्याग कर कुपथगामी बन कर प्रकृति-कोप का भाजन स्वयं मानव अपने आप ही बन जाता है, जिससे उसका एवं समाज का पतन होना सुनिश्चित हो जाता है। इसलिए मनुष्य का प्रधान कर्तव्य है अपने आत्मा की उन्नति करना। गीता में भगवान् भी कहते ही हैं—'उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।' अर्थात् मनुष्य को चाहिए कि वह अपने द्वारा अपना उद्धार करे, अपनी आत्मा को अधोगति में न पहुँचावे। तब प्रश्न यह भी उठना स्वाभाविक ही है कि आत्मा की उन्नति क्या है? और उसका अधःपतन किसमें है या किसे कहते हैं?

इस विषय पर यही कहना उचित प्रतीत होता है कि अपने अन्दर (अध्यात्म) ज्ञान परमसुख (अखण्ड) शान्त और न्याय की वर्तमान में और परिणाम में उत्तरोत्तर वृद्धि करना आत्मा की उन्नति है और इसके विपरीत दुःख के हेतु अज्ञान, प्रमाद, अशान्ति

और अन्याय की ओर झुकना तथा उसकी ही वृद्धि में हेतु बनना ही आत्मा का अधःपतन है। अतः मनुष्य को निरन्तर आत्मनिरोक्षण करते हुए आत्मा की उन्नति में प्रयत्नशील रहना चाहिए तथा अधःपतन के प्रयत्न से दूर रहना चाहिए। संसार में सुसंगति और कुसंगति भी उन्नति एवं अधःपतन का कारण बन जाती है। जो पुरुष अपनी उन्नति कर चुके हैं या उन्नति मार्ग पर प्रतिष्ठित हैं उनका संग आत्मा की उन्नति में और जो गिरे हुए हैं या उत्त-रोत्तर गिर रहे हैं उनका संग आत्मा के अवनति में सहायक होता है इसी लिए यह सूक्ति चरितार्थ है कि 'संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति।' अतएव सर्वदा सावधानीपूर्वक उत्तम पुरुषों का ही संसर्ग करना चाहिए।

उत्तम वही होते हैं जिनमें स्वार्थ, अहंकार, दम्भ और क्रोध नहीं है, जो मान, प्रशस्ति और पूजा के भूखे नहीं होते, जिनके आचरण परमपवित्र हैं, जिनको देखने और जिनकी वाणी सुनने से परमात्मा तथा सभी प्राणियों में भी प्रेम का संचार हो तथा श्रद्धा को अभि-वृद्धि हो, हृदय-मन्दिर में शान्ति का प्रादुर्भाव होकर परमपिता परमेश्वर तथा परमेश्वर की प्रजा प्राणिमात्र में सद्भाव, स्नेह का प्रवाह उमड़ जाय। इससे ईश्वर तथा परलोक एवं सच्छास्त्रों में श्रद्धा उत्पन्न होकर कल्याण की ओर झुकाव हो जाय। इस प्रकार परलोकगत एवं वर्तमान सत्पुरुषों के उत्तम आचरणों को आदर्श मान कर उसी पथ से चलने का दृढ़ व्रती बनना बड़े सौभाग्य की बात होती है तथा उन महापुरुषों की आज्ञा के अनुसार आचरण करना, चलना, व्यवहार करना आदि अपनी बुद्धि में जो बातें कल्याणकारक एवं शान्तिप्रद और श्रेष्ठ प्रतीत हों उसी को सामने रख कर अपने को उतारना चाहिए। श्री मनु ने भी कहा है :—

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥

वेद, स्मृति, सत्पुरुषों के आचरण और जिस आचरण से अपने हृदय में प्रसन्नता हो ये चार धर्म के साक्षात् लक्षण माने गये हैं।

इसमें किसी वर्ग, सम्प्रदाय, मतमतान्तर का विरोध नहीं है। इस पर यह भी प्रश्न उठता है कि जो लोग हमारी श्रुति-स्मृतियों को नहीं मानते हैं, क्या उनके लिए कोई भी धर्मस्वरूप उपाय नहीं है? क्या सभी को इन शास्त्रों को मानना आवश्यक है? प्रायः हिन्दू वर्ग मान सकता है, इसलिए हिन्दू धर्मावलम्बी की इनमें श्रद्धा हो सकती है, श्रुतियाँ या स्मृतियाँ प्रिय हो सकती हैं, किन्तु जो दूसरे मुसलमान, सिक्ख, ईसाई भाई हैं उनके लिए क्या उपाय सुलभ है?

इस पर यही कहना युक्तिसंगत है कि निरपेक्ष भाव से मनुष्यमात्र के लिए ऐसे सभी सरल एवं सुलभ उपायों का इस प्रबन्ध में वर्णन किया जायेगा, जो सभी के लिए उपयोगी होंगे, ऐसा विश्वास है। वस्तुतः मनुष्यमात्र के कर्तव्य की ओर विचार करने पर यही भाव उत्पन्न होता है कि सम्पूर्ण संसार का स्वामी और नियन्ता एक ही है और वह है ईश्वर। संसार में सभी सम्प्रदाय और मतमतान्तर किसी न किसी रूप में उसी को मानते हैं और उसी की ओर अपने अनुयायियों को ले जाना चाहते हैं। अतएव सभी मजहब एवं सम्प्रदाय तथा मतमतान्तरों के मनुष्य जिन-जिन ग्रन्थों को अपने धर्म के अनुसार अपना शास्त्र और धर्मग्रन्थ मानते हैं उनके लिए वही धर्मग्रन्थ और वही शास्त्र है। जो मनुष्य जिस धर्म को मानता है उसे उसी के धर्मशास्त्र के अनुसार अपने सदाचारी श्रेष्ठ पूर्वजों द्वारा व्यवहार एवं आचरण में लाया गया तथा उनके द्वारा उपदिष्ट उत्तम-साधनों में से जो अपनी बुद्धि में आत्मा का कल्याण करने वाले प्रिय प्रतीत हों उनको ग्रहण करना ही उनका शास्त्रानुसार चलना है। शास्त्रों के उन्हीं बातों का अनुकरण करना चाहिए जो विचार करने पर अपनी बुद्धि में कल्याणकारक प्रतीत हों, जिनको हम उत्तम पुरुष मानते हैं, उनके भी उन्हीं आचरणों का हमें अनुसरण एवं अनुकरण करना है जो हमारी बुद्धि से उत्तम से उत्तम प्रतीत हों। उनके जो चरित्र एवं आचरण हमारी दृष्टि में अश्रेयस्कर, अनुचित और शंकास्पद प्रतीत हों उनको कदापि ग्रहण नहीं करना चाहिए।

जिनका कल्याण हो चुका है या जो कल्याण के मार्ग पर बहुत

कुछ अग्रसर हो चुके हैं ऐसे पुरुषों का संसर्ग न होने पर या किसी मनुष्य-विशेष में अपनी दृष्टि से ऐसा होने का विश्वास न होने पर ऐसे सत्पुरुष की प्राप्ति के लिए परमेश्वर से इस भाव से प्रार्थना करनी चाहिए कि हे प्रभो, हे परमात्मन्, आपमें मेरा अनन्य प्रेम हो। इसके लिए कृपा कर मुझे उन महापुरुषों का संग सुलभ करायें जो सच्चे मन से, सच्ची भावना से, श्रद्धा से आपके प्रेम-प्रवाह में मग्न रहते हैं। ऐसी प्रार्थना प्रभु अवश्य सुनते हैं, उनकी कृपा से साधक को अनुकूल सत्पुरुष की प्राप्ति होकर ही रहती है।

यहाँ पर भी यह एक शंका हो सकती है कि जिनका ईश्वर में विश्वास है वे ही ईश्वर की प्रार्थना कर सकते हैं। ईश्वर में विश्वास रखने वालों का संतों और शास्त्रों में भी विश्वास होना सम्भव है, परन्तु जिनका ईश्वर में, परलोक में, शास्त्रों में विश्वास ही नहीं है, उनके लिए क्या कर्तव्य मार्ग है ?

इसका भी समाधान यह है कि यद्यपि ऐसे लोगों की स्थिति अति दयनीय होती है, तथापि वे भी अपनी बुद्धि के अनुसार अपने आत्मा की उन्नति हेतु उपाय कर सकते हैं। ऐसे लोगों को चाहिए कि अपनी बुद्धि में जो पुरुष अपने से योग्य एवं आचरण आदि की दृष्टि से श्रेष्ठ प्रतीत हों उन्हीं का संग प्राप्त करें। संसार में मूढ़ से मूढ़ और बुद्धिमान् से बुद्धिमान् प्रायः सभी जानते हैं कि जगत् में हमसे उत्तम मनुष्य अवश्य हैं और बुरे भी मनुष्य हैं। अतएव सदाचार, व्यवहार विद्या, अनुभव, सच्चाई, दया आदि गुणों में जो अपने से श्रेष्ठ प्रतीत हों, जो सुहृदय, विचारशील और विद्वान् हों उन्हीं को आदर्श मान-कर उनके सदाचरणों का, उपदेशों का स्वार्थहीन होकर अनुकरण करना चाहिए वही धर्म है।

सभी मनुष्यों में प्रायः दो प्रकार की वृत्तियाँ होती हैं—एक ऊर्ध्व की ओर ले जाने वाली अर्थात् आत्मा को उन्नत बनाने वाली और दूसरी अधोगति को ले जाने वाली अर्थात् आत्मा का पतन कराने वाली। इन दोनों में जो विवेकवृत्ति कल्याण में सहायक होकर उत्तम आचरणों में लगाती है वह ऊपर उठाने वाली है और जो

अविवेकवृत्ति रागद्वेषमय अहंकारादि के द्वारा अधम आचरणों में प्रवृत्त करती है वह नीचे गिराने वाली है।

मनुष्य विवेकवृत्ति द्वारा अपनी उन्नति करना चाहता है, परन्तु अविवेकवृत्ति उसे बलपूर्वक सत्य-मार्ग से खींच कर अन्याय एवं असत्य पथ पर ढकेल देती है। अर्जुन ने भी भगवान् श्रीकृष्ण से प्रश्न किया था कि प्राणी हठात् लगाये हुए सा, न चाहते हुए भी किससे प्रेरित होकर पाप का आचरण करता है ?

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पुरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः।।

—गीता ३।३६

भगवान् कृष्ण ने समाधान भी किया कि रजोगुण से उत्पन्न काम ही, क्रोध ही है। यही महा अशन अर्थात् अग्नि के सदृश भोगों से न तृप्त होने वाला बड़ा पापी है। इस विषय में तू इसको ही शत्रु मान। राग रूप आसक्ति का परिणाम है सब कुछ।

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।

—गीता ३।३७

यह बिल्कुल सत्य है कि आर्यसंस्कृति के प्राचीन तथा सनातन पुनीत पथ से गिर कर दुःखी बने हुए आज के मानव समाज के लिए मानवता महाव्रत के पालन से बढ़ कर अन्य कोई मांगल्य मार्ग प्रशस्त एवं सरल नहीं दिखायी पड़ता। इस विषय में विश्व के बड़े-बड़े विचारक मनीषि विध्वस्त मानवता के पुनरुज्जीवन में ही जगत् के कल्याण की कल्पना करते हैं। आज जो वैज्ञानिक प्रगति हो चुकी है या हो रही है उसका रुख मानवता-महाव्रत के आभाव में विनाशपथ की ओर मुड़ा हुआ प्रतीत होता है। यदि वैज्ञानिक प्रगति को सर्वजन-प्राणिमात्र-हिताय बनाना है तो जगत् को मानवता-महाव्रत पालन की सुखद दिशा में लाना ही होगा, नहीं तो अब तक की जो भी वैज्ञानिक प्रगति है और उसका फल सामूहिक विनाश और विनिपात ही होना है।

यह बात सभी चिन्तनशील महानुभाव स्वीकार करते हैं कि वर्तमान समय में विश्व में जो अनेक प्रकार के संकट, संघर्ष, कलह, वैमनस्य, अविश्वास, विभेदक प्रवृत्तियाँ, भीषण युद्ध की विभीषिकाएँ आदि उदित हो गयी हैं वे मानवताव्रत के अवांछनीय त्याग का ही कुत्सित परिणाम हैं, जिससे आज के मनुष्यमात्र अविश्वस्त, परित्रस्त, खिन्न एवं चिन्तायुक्त बन कर परस्पर विनाशक कार्यों में लगे हुए हैं। यदि उधर से उसे मोड़ा नहीं गया, जो आज की स्थिति में अत्यावश्यक है, तो आज का मानव, मानव न रह कर विनाशरेखा के निकटतम पहुंच गया है। यदि उसे मोड़ा नहीं गया तो अपनी चिरसंभृत संस्कृति के साथ यह मानव सदा के लिए भूमिसात् हो जायेगा। अपने स्थान और मर्यादा से विच्युत मनुष्य अथवा वस्तु का परिणाम विनाश के अतिरिक्त और क्या हो सकता है ?

अपने देश, अपने राष्ट्र और सम्पूर्ण जगत् को पारस्परिक भ्रातृ-भाव में बाँधने, मतवाद से उत्पन्न विभेदक खाईं को पाटने, सदाचार और चारित्रिक सम्पत्ति को हृष्ट-पुष्ट बना कर ही भारत सुप्तप्राय सनातन नीतिमत्ता को पुनर्जाग्रत करने, आध्यात्मिक गुणों (दया, दान, दाक्षिण्य, सहिष्णुता, शुचिता, सत्यता) आदि के विकास द्वारा दैवी सम्पत्ति की अभिवृद्धि करने एवं अनैतिकता, अनाचार, राष्ट्र-द्रोह, विश्वासघात, पारस्परिक द्वेष, भूतद्रोह, असूया, दम्भ, अहंकार, उत्कोच (रिश्वत) आलस्य, अकर्मण्यता आदि दुर्गुणों को निकालने के लिए सर्वजनहिताय, सर्वजनसुखाय, मानवता-महाव्रत का परिपालन परमावश्यक है।

इस मंगलमय शुभ, पुण्य अनुष्ठान में मतवाद, वर्गवाद, विभिन्न पार्थक्यवादों को प्रतिबन्धक (बाधक) नहीं बनना चाहिए, क्योंकि मानवता-महाव्रत सार्वभौम एवं सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक आन्दोलन सब समयों में सदैव अव्याहतगति से मनुष्यमात्र के लिए प्रयुक्त होने योग्य एवं परम उपादेय है, इसका उच्च एवं उज्ज्वल ध्येय बिना किसी भेदभाव के मानवमात्र के लिए कल्याण कामना है।

हमारी नवजात स्वतन्त्रता नैतिक तथा चारित्रिक बल के अभाव में धूमिल हो जायेगी तथा यह स्वराज्य सुराज्य नहीं बन पायेगा

जिसकी सर्वाधिक आवश्यकता है। स्वतन्त्रता एवं स्वराज्य की प्राप्ति में देश-भक्त नेताओं ने भी मानवता-महाव्रत का यथाशक्य परतन्त्रतावस्था में रहकर अंशतः पालन किया था, जिसके फलस्वरूप स्वतन्त्रता एवं स्वराज्य सुलभ हुआ है। अब उसकी सुरक्षा बिना मानवता-महाव्रत के असम्भव है।

दुर्भाग्य से आज राष्ट्र में ऐसा वातावरण बनता जा रहा है जिससे बड़ी निराशा की घटा घहराती प्रतीत हो रही है। आज अधिकांश लोग स्वतन्त्रता का गलत अर्थ लगा रहे हैं तथा लोकतन्त्र की परिभाषा का भी दुरुपयोग कर रहे हैं। स्वतन्त्रता से प्राप्त हुए फल अथवा प्रभाव एवं अधिकार का उपयोग अपने व्यक्तिगत तुच्छ स्वार्थ के लिए करते दिखाई पड़ रहे हैं, ऐसे संकुचित स्वार्थपरायण भावनाग्रसित होकर स्वतन्त्रता का गला घोटने में निःसंकोच आगे बढ़ रहे हैं। अपने व्यक्तिगत स्वार्थ-सम्मान के पीछे राष्ट्र के सामूहिक हित को एवं गौरवमयी परम्परा को तिलाञ्जलि दे रहे हैं। व्यक्तिगत लाभ की एक होड़-सी लगी हुई है। इस अवाञ्छनीय एवं विश्वासघातिनी प्रतियोगिता में वे लोग भी सम्मिलित जान पड़ते हैं जिन्होंने महात्मा गांधी के स्वतन्त्रता संग्राम में सहयोगी बन कर अनेक कष्ट सहन किये थे। यह मानसिक परिवर्तन मानवता-महाव्रत की उपेक्षा का ही मूल परिणाम है। इसलिए हे मानव, तुझे तो महामानव बनना था, तुम्हारा जीवन एक अनुपम अमूल्य रत्न-सा भारतमाता के लिए अर्पण करने का था, क्यों तू महामानव नहीं बनना चाहता? महामानव बनना न सही, परन्तु मानव तो शरीर, इन्द्रिय, बुद्धि, मन आदि प्राप्त कर दिखाई पड़ रहा है। उसे दानव रूप में मत बदल, मानव ही रहने दे। सही मानव बनने का तो प्रयास अवश्य कर।

वह मानवरूप भी तभी सही-सार्थक माना जायेगा, जब जगत् को पारस्परिक प्रेमल, सुखमय, भ्रातृभावबद्ध तथा सुसमृद्ध एवं निर्भय बनाने वाली मर्यादाओं की गणना भगवान् मनु ने जो मानव बनने एवं मानवता के लिए प्रस्तुत की है उस पर तू अवश्य ध्यान दे, तेरा लाख-लाख शुक्रिया। तेरा क्या सभी का भला होगा। तू धन्य हो जायेगा। तेरे मस्तक को आसमान चूमेगा, चरण को धरती माँ

सहलायेगी। तेरे रोम-रोम को दिशाएँ स्पर्श कर पवन द्वारा विश्व के कोने-कोने में मधुर मंगलमय शुभसन्देश पहुँचाने में कसर नहीं रखेंगी। मनु महाराज ने बीस मर्यादाओं को तुम्हारे लिए मानो महामन्त्र, महाशक्ति, महौषध के रूप में प्रकट किया है। इसे अब भी तू समय रहते पहचान, अपना इसे, नहीं तो तेरे हाथ कुछ भी नहीं आयेगा।

उन बीस मर्यादाओं में दस मर्यादाएँ निषेधात्मक होने से त्याज्य हैं, तथा दस मर्यादाएँ विधिरूप में ग्राह्य हैं। इन मानवता-महाव्रतों का आधिदैविक (प्रकृतिगत) महानियमों के साथ पूर्ण सामञ्जस (ऐक्य) होने से ये बीस मर्यादाएँ मानवमात्र के लिए ही नहीं, अपितु प्राणि-मात्र के वरदान हैं, जिन्हें अनिवार्य रूप में अवश्य स्वीकार करना ही चाहिए, नहीं तो तुम्हारा अस्थिपञ्जर शरीर केवल ठठरी है, धोखा है, खेत में गड़े हरहे पशुपक्षी को डराने हेतु। तेरा मानवताहीन शरीर तो तेरे लिए भी डरावना हो जायेगा, इसलिए अब भी ऐसी मर्यादाओं का अपने में आधान कर जिससे तू स्वयं इस शरीर का आदर कर सकेगा। अतः मानवता-महाव्रती बनने के लिए उन सभी मर्यादाओं का पालन करने से अपना क्या प्राणिमात्र का कल्याण होगा।

मानवता-महाव्रत की मर्यादाएँ

दश निषेधात्मक मर्यादाएँ :

१. चौर्य-त्याग,
२. हिंसा-त्याग,
३. व्यभिचार-त्याग,
४. क्रूर-वचन-त्याग,
५. असत्य-त्याग,
६. पैशुन्य का त्याग,
७. असम्बद्ध-प्रलाप का त्याग,
८. परधनहरणेच्छा-त्याग,
९. अनिष्ट-चिन्तन का त्याग,
१०. नास्तिकता का त्याग।

दश विधानात्मक मर्यादाएँ :

१. दान देना,
२. पीड़ितों की रक्षा,
३. सेवा करना,
४. प्रिय बोलना,
५. सत्य बोलना,
६. हित बोलना,
७. स्वाध्याय,
८. इन्द्रिय-निग्रह,
९. सन्तोष,
१०. आस्तिकता।

उक्त इन सभी निषेधात्मक तथा विधानात्मक मर्यादाओं की परिभाषा तथा व्याख्या अनेक मतमतान्तरों में भी की गयी है।

१—चौर्य-त्याग महाव्रत

अदत्तानामुपादानं वर्जयेत् (वेद) चोरी मत करो अर्थात् बिना दिये किसी वस्तु को स्वयं ग्रहण मत करो।

वास्त-ए-कसान-मवर (अवेस्ता)—परवन मत लूटो।
लोतिग् नोव् (इंजील)—चोरी मत करो।

अदिन्नादाना बरेमणी, सिक्खापदं समादियामि (भगवान् बुद्ध)—चोरों से दूर रहने की शिक्षा ग्रहण करो।

अदिन्नं पियनायए-(महावीर स्वामी)—चोरी न करो। दाउ शैल्ट नाट स्टोल (बाइबिल)—तुम्हें चोरी नहीं करनी चाहिए। किसी भी मनुष्य को परधन, परप्राण और परसम्पत्ति पर अधिकार नहीं जमाना चाहिए—कुरान। चोरी करने वाले मन से भी संकल्प करें तो उसे ईश्वर कभी माफ नहीं करता है।

यहाँ चौर्य आदि सभी के स्वरूप एवं प्रकार दिये जायेंगे :

चौर्य के अनेक भेद

१—अदत्त वस्तु का आदान (विना दिये हुए पदार्थ को ग्रहण करना) चोरी है।

२—जानते हुए भी चुराई हुई वस्तु को भी ग्रहण करना भी चोरी ही है।

३—चोरी करने वालों का किसी प्रकार का सहयोग करना, प्रेरणा देना, अवसर दिलाकर चोरी कराना भी चौर्यवृत्ति ही है।

४—राज्य से किसी भी निषिद्ध वस्तु का आयात-निर्यात करना या कराना भी चौर्य है।

५—व्यापार एवं बर्ताव में अप्रमाणिक रहना चौर्य ही है।

६—कृत्रिम वस्तु, विकृत वस्तु, अनुपयोगी वस्तु को शुद्ध वस्तु, उपयोगी वस्तु कह कर बेचना भी चौर्य है।

७—कालाबाजार या उसमें सहयोग देना भी चौर्य है।

८—दुःसाहस से, जोर-जबर्दस्ती कर दूसरे की वस्तु ले लेना भी चौर्य है।

२—अहिंसा महाव्रत

न हिंस्यात् सर्वा भूतानि (वेद)—प्राणिमात्र की हिंसा न करो। दए नामं बंधुहोम न एदास्न इयोशेम (अवेस्ता)—मानव पर शस्त्र न उठाओ।

लोटिर्त सः (इंजील)—हिंसा मत करो।

पाणातिपाता वेरमयी सिक्खापद समादियामि (भगवान् बुद्ध)—प्राणिहिंसा से दूर रहने की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

पाणेयनाय वा एज्जा (महावीर स्वामी)—प्राणियों के प्राणों का नाश मत करो।

दाउ शॅल्ट नाट किल (बाइबिल)—तुम्हें हिंसा नहीं करनी चाहिए।

कोई भी मोमिन इमानदार किसी पर जुल्म न करे (कुरान)।

हिंसा के विविध प्रकार

१—प्राणियों का प्राणाघात करना हिंसा है।

२—पशुओं पर, मजदूरों पर, गरीबों पर, अधिक भार लादना हिंसा है।

३—पशुओं को तथा अपने सामने किसी गरीब, असहाय रोगी, वृद्ध, अनाथ को भूखा रखना भी हिंसा है।

४—प्राणियों से अत्यधिक श्रम कराना भी हिंसा है।

५—किसी के साथ क्रूर व्यवहार करना हिंसा है।

६—आत्महत्या एवं गर्भहत्या भी हिंसा है।

७—मांस एवं अण्डों का व्यापार व्यवहार भी हिंसा है।

८—मांसव्यापार के लिए पशुपालन भी हिंसा है।

९—हिंसक दल का सदस्य होना भी हिंसा है।

१०—किसी से घृणा करना भी हिंसा है।

११—जीवित पशुओं के चमड़ों को काम में लेना भी हिंसा है।

३—एकपत्नी महाव्रत

नाति चरामि (वेद)—परस्त्री से अनुचि सम्बन्ध न करूं।

लोतिनात् (अवेस्ता)—पत्नी के अतिरिक्त किसी स्त्री से अनुचित सम्बन्ध मत करो।

कामेसुमिच्छाचारा वेरमणी सिक्खापदं समादिपामि (भगवान् बुद्ध)—व्यभिचार से अलग रहने की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

मूलमेय महम्मस्स महादोस समुस्सयं (महावीरस्वामी)—व्यभिचार अधर्म का मूल और महादोषों का स्थान है।

दाउ शैल्ट नाट कमिट एडल्टरी (बाइबिल)—तुम परस्त्रीगमन न करो। भोगविलास मनुष्य को सत्य से गिरा देता है (कुरान)।

व्यभिचार के विविध प्रकार

१—स्त्री-पुरुषों का विवाह में परस्पर की गई पवित्र प्रतिज्ञा से गिरना व्यभिचार है ।

२—परस्त्री-संसर्ग व्यभिचार है ।

३—विवाह-विच्छेद भी व्यभिचार है, स्त्री-पुरुष में किसी एक के गलत धारणा से ।

४—मन से परस्त्री का चिन्तन व्यभिचार है ।

५—वाणी से परस्त्री के विषय में अश्लील भाषण करना व्यभिचार है ।

६—सिनेमाघरों में अश्लील चित्रों का प्रदर्शन और दर्शन व्यभिचार है ।

४—पारुष्य (क्रूरता) त्याग महाव्रत

न दुरुवताम् स्पृहेत् (वेद)—क्रूर वचन बोलने की इच्छा मत करो ।

(जब इच्छा में निषेध है तब प्रयोग में तो अत्यधिक प्रत्यवास सम्भव होने से पूर्णतः निषेध है ही ।)

गवस्नी हुख्त गुमाह (अवेस्ता)—वाणी से सद्वचन बोलो, क्रूर वचन नहीं ।

मावेत् वेचिम् वेयाद् हालशोम् (इंजील)—जीवन और मरण जिह्वा के अधीन है । इसलिए क्रूर वचन का त्याग करो ।

मावो च परुषं किंचि उत्ता परिवेदयुं तुं दुःखहिंसारंभकथा (भगवान् बुद्ध)—क्रूर वचन नहीं बोलना चाहिए, क्योंकि यह दुःखों का मूल है ।

द स्ट्रोक आफ ए ह्विप मेकेथ ए ब्लू मार्क, बट द स्ट्रोक आफ द टंग विल ब्रेक द बोन्स (बाइबिल)—कोड़े का घाव केवल नीला चिह्न करता है, किन्तु क्रूर वाणी का घाव हड्डी तोड़ देता है, अतः क्रूर वचन नहीं बोलना चाहिए ।

पारुष्य के विविध प्रकार

१—क्रूर वचन बोलना पारुष्य है।

२—मर्मभेदी वचन बोलना पारुष्य है।

३—दूसरों को दुःख पहुँचा कर बढ़ना पारुष्य है।

४—प्राणिहिंसा से आगे बढ़ना पारुष्य है।
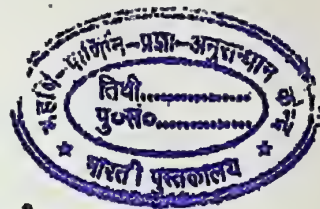
५—अनृतत्याग महाव्रत

मृषोद्यं वर्जयेत् (वेद)—झूठ का त्याग करना चाहिए।

अन्दर खुदायानेगान रास्त सखुन फरमान कारवाद्याश (अवेस्ता)—बड़ों के सामने सत्य वचन ही बोलो, झूठ नहीं।

मुसावाद बेरमणी सिक्खापदं समादिपामि (भगवान् बुद्ध)—झूठ बोलने से पृथक् रहने की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

बी नाट विलिंग टू मेक एनी मैनर आफ लाइ (बाइबिल)—किसी प्रकार के असत्य वचन की वृत्ति रखना उचित नहीं।

अनृत (झूठ) के विविध प्रकार

१—असत्यवचन अनृत है।

२—वञ्चनापूर्ण शब्दव्यवहार अनृत है।

३—असत्यतापूर्ण किसी विषय में निर्णय देना एवं निर्णय लेना भी अनृत माना गया है।

४—खरीदने और बेचने में मिथ्या (झूठ), परिमाण (तौल), संख्या बताना अनृत है।

५—बनावटी (कृत्रिम) हस्ताक्षर करना भी अनृत है।

६—मिथ्या प्रमाण-पत्र प्राप्त करना और देना भी अनृत है।

६—पैशुन्यत्याग महाव्रत

पैशुन्यं सर्वशः वर्जयेत् (वेद)—चुगली करना सर्वथा वर्जित है।

अवादुश सरूव प्रवेन्द मकुन (अवेस्ता)—चुगली से दूर रहो।

रो तेलेह रांचील बीमेचा (इंजील)—वाणी चुगली करने के लिए नहीं है।

मेनी हैव डाइड बाइ दी एज आफ दी सोर्ड, बट नाट सो मेनी ऐज हैव पेरिश्ड बाइ देअर आन टंग (बाइबिल)—तलवार की धार से जितने मनुष्य नष्ट नहीं होते उससे कहीं अधिक चुगली से हो जाते हैं।

पैशुन्य (पिशुनता) के अनेक भेद

१—अहित करने की भावना से दूसरों के दोषों का उद्घाटन करना पैशुन्य (पिशुनता) ही है।

२—किसी के मर्म का उद्घाटन पैशुन्य है।

३—जो योग्यता अपने में या अन्य किसी में नहीं, फिर भी उसकी सूचना दी जाय यह घोर पिशुनता है।

४—चुगली करना पैशुन्य है।

७—असम्बद्ध प्रलाप त्याग महाव्रत

अतिसम्वादी ब्रूयात् (वेद)—असम्बद्ध प्रलाप न करे।

प्रायो हुख्तः जम्मातवो बन्ध हवोत बन्ध हे (अवेस्ता)—सद्वचनों से आगे बढ़ो, न कि असम्बद्ध प्रलाप से।

यथावादी तथाकारी यथाकारी तथावादी (भगवान् बुद्ध)—असम्बद्ध प्रलाप छोड़ कर जैसा कहे वैसा करे और जैसा करे वैसा कहे।

असम्बद्ध प्रलाप के विविध प्रकार

१—वाणी एवं व्यवहार में अन्तर होना (भेद होना) असम्बद्ध प्रलाप है।

२—शुगक (निष्प्रयोजन) वाद-विवाद करना असम्बद्ध प्रलाप है।

३—वितण्डा (व्यर्थ जल्पना) असम्बद्ध प्रलाप ही है।

४—अतिवाद (बढ़ा चढ़ा कर) बोलना असम्बद्ध प्रलाप है।

५—ऐतिहासिक यथार्थ चरित्रों में मिथ्या (झूठी) कथाओं का मिश्रण करना असम्बद्ध प्रलाप है।

८—परद्रव्य-हरणेच्छा-त्याग महाव्रत

मा गृधः कस्यस्विद्धनम् (वेद)—परधन की इच्छा न करो।

लो ताकमोद वेत् उे आचा (इंजील)—परधन की इच्छा मत करो।

दाउ शैल्ट नाट कवेद दाइ नेवर्स हाउस (बाइबिल)—पड़ोसी की सम्पत्ति की इच्छा मत करो।

परद्रव्यहरणेच्छा के विविध भेद (प्रकार)

१—पर (दूसरे) के द्रव्य को किस प्रकार से हरा जाये यही इच्छा परद्रव्यहरणेच्छा है।

२—परद्रव्यहरण के लिए दूसरों को फँसाना परद्रव्यहरणेच्छा है।

९—अनिष्ट चिन्तन-त्याग महाव्रत

मनसानिष्टचिन्तनं वर्जयेत् (वेद)—मन से किसी का अनिष्ट न विचारे।

स्फझगी मकुन खयूमगोनी मवर (अवेस्ता)—ईर्ष्या और क्रोध से दूसरों के लिए अनिष्ट मत विचारो।

सव्वे पाणा सव्वे भन्ता सव्वे मुग्गला सव्वे अत्तभाव पर्यापन्ता सुखो होन्तू (भगवान् बुद्ध)—सब प्राणी, सब भूत, सब पुद्गल और सब वस्तु आत्म भाव से सम्पन्न हैं, सब सुख चाहते हैं इसलिए उनका अनिष्ट चिन्तन करना अनुचित है।

ही दैट रेण्डरेथ इविल फार गुड इविल शैल नाट डिपार्ट फ्राम हिज हाउस (बाइबिल)—दूसरों के लिए इष्ट चिन्तन छोड़ कर जो लोग उनके लिए अनिष्ट चिन्तन करते हैं उनके घर से अनिष्ट कभी जाने वाला नहीं।

अनिष्ट चिन्तन के विविध प्रकार

१—मन से निषिद्ध वस्तुओं (तत्त्वों) का चिन्तन अनिष्ट चिन्तन माना गया है।

२—अन्य को पीड़ा देने का मन से भी संकल्प अनिष्ट चिन्तन है।

३—दूसरे की प्रतिष्ठा को मिटाने एवं भंग करने का चिन्तन अनिष्ट चिन्तन है।

४—अन्य के सुख को देख कर दुःखी होना, दूसरों के दुःख को देख कर सुखी होना अनिष्ट चिन्तन है।

१०—नास्तिकतात्याग महाव्रत

अश्रद्धामनुते अथात् (वेद)—नास्तिकता नाश की ओर ले जाती है।

अवरेना वीची थाह्या नरेम नरेम खख्याई (अवेस्ता)—सब लोगों को ईश्वर-श्रद्धा में सुदृढ़ रहना चाहिए।

उच्छेदवादी इति नत्थि किंचि (भगवान् बुद्ध)—आत्मा कर्म और कर्मफल नहीं है, यह सिद्धान्त विनाशक है।

नास्तिकता के विविध प्रकार

१—आत्मविश्वास न करना नास्तिकता है।

२—ईश्वर की सत्ता को न मानना नास्तिकता है।

३—धर्म निरपेक्ष भाव भी नास्तिकता है।

४—मताग्रह का उन्माद भी नास्तिकता है।

५—आचरणरहित केवल वाणी का आस्तिक होना भी नास्तिकता है।

६—शील-संकोचहीन होना भी नास्तिकता है।

७—वेद-पुराण शास्त्रवाक्यों को किसी सम्प्रदाय जातिविशेष द्वारा वनाया गया या उन्हीं के लिए है यह मानना भी नास्तिकता है।

८—प्रकृतिसिद्ध सनातन मर्यादाओं का उल्लंघन करना भी नास्तिकता है।

९—राष्ट्रभाषा एवं राष्ट्रीय वेशभूषा का तथा राष्ट्रभाषाभाषी एवं राष्ट्रीयवेशभूषाधारी का अनादर करना भी नास्तिकता है।

१०—अनाथ, वृद्ध, व्याधिग्रस्त एवं विधवाओं का पालन न करना भी नास्तिकता है।

इस प्रकार मानवता महाव्रत की निषेधात्मक मर्यादाओं का सूत्र रूप में अनेक मतमतान्तर प्रमाणों द्वारा प्रदर्शन किया गया। अब इसके बाद ही मानवता महाव्रत की विधानात्मक मर्यादाओं का भी सूत्र रूप में विभिन्न मतमतान्तरप्रमाणों द्वारा प्रदर्शन किया जा रहा है जो इस महाव्रत का प्रमुख एवं अनिवार्य भाग है जिससे सामान्य प्राणी भी महापुरुषत्व को प्राप्त कर अपने जीवन को धन्य बना सकता है।

विधिरूप दश मानवता महाव्रत

१—दान महाव्रत

वेद—श्रिया देयम् धिया देयम्—धन का दान बुद्धि और विवेक से करो।

अवेस्ता—यजशन-व-न्यायशन रादी जोर वरस्ने अशहीदार—उदार-वृत्ति से दान देते रहना चाहिए।

इंजील—हा अनेक टा आनिक वेरी चा—स्वयं उपार्जित धन से ही दान करो।

भगवान् बुद्ध—अज्झतिक वाहिर दान मंगलम्—(आध्यात्मिक) शारीरिक और बाहरी वस्तुओं का दान विश्व-कल्याणकारी है।

बाइबिल—निग्लेक्ट नाट डू प्रे एण्ड टु गिव आम्स—प्रार्थना और दान करने में कभी उपेक्षा मत करो।

दान के विविध प्रकार

१—प्राणिहित के लिए सम्पत्ति का त्याग दान है।

२—प्राणिहित के लिए अन्न देना दान है।

३—प्राणिहित के लिए जल देना दान है।

४—प्राणिहित के लिए औषध वितरण दान है।

५—प्राणिहित के लिए विद्या देना दान है।

६—प्राणिहित के लिए श्रम का विनियोग दान है।

२—संरक्षण महाव्रत

वेद—आर्त्तत्राणाय वः शस्त्रम् न प्रहर्तुमनागसि—तुम्हारी शस्त्रशक्ति पीड़ितों की रक्षा के लिए है, निर्दोष को मारने के लिये नहीं।

अवेस्ता—उस गेऊस स्तुमे ताया अत्वा, हजस् वहेच्स्त्र जयानय चा वीवा पाचा—समस्त जीवों को आक्रामकों से बचाने का पवित्र व्रत धारण करना चाहिये।

इंजील —डी आहावता लेरी आचा कामो च—अपने पड़ोसी को अपने जैसी रक्षा करो।

भगवान् बुद्ध—ग्लानानामस्मि भैसज्यं भवेयं वैद एव च।
तदुपस्थापकश्चैव या चारोगापुनर्भव॥
—मैं रोगियों की औषधि, वैद्य और सेवक बनकर रक्षा करूँ।

बाइबिल—वी नाट वान्टिग इन कम्फटिंग देम दैट वीप, एण्ड वर्क विद देम दैट मोर्न—भय से उद्विग्न मनुष्यों को अभयदान देने में पीछे न रहना और आई हुई आपत्ति को दूर करने के लिए प्रयत्नशील लोगों के साथ प्रयत्न में लग जाना मानव का कर्तव्य है।

कुरान—बलवान् वह नहीं जो दूसरों को नीचे गिराता हो, अपितु सच्चा बलवान् वह है जो दूसरों की रक्षा करता है।

रक्षा के विविध प्रकार

१—आर्त (पीड़ितों) की रक्षा।

२—दीनों, अनाथों, वृद्धों, बालकों, रोगियों की रक्षा।

३—मूक पशु-पक्षियों की रक्षा।

४—स्वभाषा, स्वलिपि, स्ववेष, स्वधर्म, स्वसंस्कृति, स्वसभ्यता की रक्षा।

३—सेवाभाव महाव्रत

वेद—मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव, अतिथिदेवो भव —माता, पिता, गुरु, अतिथि, श्रान्त रोगी आदि की सेवा उन्हें ईश्वर मानकर करो।

अवेस्ता—रव एत्थ दथांम वहोस्तेम अस्ति—सेवा भाव उत्तम गुण है।

भगवान् बुद्ध—माता पितु पट्ठानं पुत्तदारस्स संगहो, अनाचकुला-चकर्मन्ता एतं मंगलमुत्तमम्—माता, पिता, गुरु आदि की सेवा स्त्री, पुत्र आदि का सम्भालना और व्याकुलता-रहित होकर व्यापार करना यह उत्तमोत्तम मंगल-मय सेवा है।

महावीर स्वामी—तत् सेस मग्गो गुरुविद्धसेवा—गुरु तथा वृद्ध जनों की सेवा करना सुखमय स्थिति में पहुंचने का मार्ग है।

बाइबिल—डिस्पाइज नाट ए मैन इन हिज ओल्ड एज, फार वी आल सो शैल बीकम ओल्ड—वृद्धों का तिरस्कार मत करो, क्योंकि हम सबको इसी प्रकार वृद्ध होना है।

सेवा के विवध प्रकार

१—माता-पिता, वृद्धों, श्रान्तों और रोगियों की परिचर्या सेवा है।

२—राष्ट्र के विकासोन्मुख कार्यों में सहयोग करना सेवा है।

३—गौ आदि पशुपालन में सहयोग करना राष्ट्र-सेवा है।

४—समाज की त्रुटियों को निकाल कर उसे उन्नति की ओर लगाना और ले जाना समाज की सेवा है।

४—प्रियवादिता महाव्रत

वेद—जिह्वा मे मधुमत्तमा—हमारी जीभ मधुर बोले।

अवेस्ता—शीरीन व चर्वं खुरदाद—सम्पूर्ण सुख के लिए मधुरवाणी आवश्यक है।

भगवान् बुद्ध—यासा वाचा नेला कण्णसुसुखा पोरीहृदयंगमा सा वाचा वदेय्य—जो वाणी कर्णप्रिय, सभ्यता-सम्पन्न और हृदयस्पर्शी हो वही बोलो।

बाइबिल—ए स्वीट वर्ड मल्टिप्लायेथ फ्रेन्ड्स एण्ड एप्पीजेज एनीमीज एण्ड ए ग्रसियस टंग इन ए अगुड मैन अबाउण्डेथ—मधुर-वाणी सबको मित्र बनाती है, शत्रुत्व मिटाती है और विनम्र जिह्वा सब समृद्धि देती है, यथार्थ और प्रिय बोलना ही प्रियवादिता है।

५—सत्यमहाव्रत

वेद—तस्मादु सत्यमेव वदेत्—सत्य ही बोलना चाहिये।
सत्यं वद धर्मञ्चर—सत्य बोलो, धर्म का आचरण करो।

अवेस्ता—अशही आमोज सनेदार देह—सर्वदा पवित्र और सत्यवचन की शिक्षा ग्रहण करो।

इंजील—होतामो शेल हाले आदोशवरुक् हुयमेट—सत्य ही ईश्वर-ज्ञानीय मुद्रा है।

भगवान् बुद्ध—मुसावादा वेरमयी कुशलम्—असत्य से निवृत्त होना मंगलकारक है।

बाइबिल—इन नो वाइज स्पीक अगेन्स्ट द ट्रुथ—किसी भी संयोग में असत्य न बोलो।

महावीर स्वामी—सच्चं लोगम्मि सारभूपम्—सत्य ही लोक में सारभूत है।

सत्य के विविध प्रकार

१—यथाश्रुत (जैसा सुना हो) यथादृष्ट (जैसा देखा हो वैसा ही) बोलना सत्य है।

२—जिन किसी वचनों से प्राणि का वास्तविक हित होता हो वे सत्य हैं।

३—व्यवहार एवं वर्ताव में प्रामाणिक रहना सत्य है।

४—वञ्चनापूर्ण व्यवहार न करना सत्य है।

६—स्वाध्याय महाव्रत

वेद—स्वाध्यायान्मा प्रमदितव्यम्—स्वाध्याय से प्रमाद नहीं करना चाहिये, तभी स्वाध्यायोऽध्येतव्यः श्रुतिवचन संगत होता है।

अवेस्ता—प्रा मन एव्यो राओं घहे यसेया ईतीय वसेक्षे ईतोम—मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि लोकशिक्षण स्वाध्याय में मन रोकने में उदार बनूं।

भगवान् बुद्ध—सज्झायं मा पमदितव्यम्—स्वाध्याय से प्रमाद पाप है।

महावीर त्यागी—सज्झायं एगन्त निसेवणाम सुतत्थ सञ्चिनाणाय वीइम—एकान्त में रहकर निरन्तर स्वाध्याय और शास्त्रों के अर्थों का मनन पुनः पुनः करते रहना चाहिये।

बाइबिल—डिस्पाइज नाट द डिस्कोर्स आफ देम दैट आर एन्स्यन्ट एण्ड वाइज, बट एक्वेण्ट दाइसेल्फ विद देअर प्रोबंन्स—पूर्वजों के वचनों का तिरस्कार न करना, अपितु उनमें विद्यमान अर्थों को आत्मसात् करने का प्रयत्न करो।

स्वाध्याय के विविध प्रकार

१—पठित ग्रन्थों का पुनः पुनः (बार-बार) अभ्यास स्वाध्याय है।

२—हितकारी आयुर्वेदिक, अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र आदि का अवलोकन करना भी स्वाध्याय है।

३—ज्ञान से तृप्त न होना स्वाध्याय है।

४—ईश्वर स्तुतिपरक स्तोत्रों का पठन भी स्वाध्याय है।

५—ज्ञान-विज्ञान के वर्धक दर्शनशास्त्र का अभ्यास स्वाध्याय है।

६—वेदवेदांगादि का अध्ययन-अध्यापन भी स्वाध्याय है।

७—हितवादिता महाव्रत

वेद—हितं ब्रूयात्—हितकारक वाणी बोलो।

अवेस्ता—तान रामिश्न आफ झुनवाद—हितकर वाणी से जगत् में आनन्द बढ़ाओ।

भगवान् बुद्ध—अत्तं मा पणिधि च एवं मंगलमुत्तमम् यो अदानेन नियोजये—प्राणियों को अपने समान मानकर उन्हें हितमार्ग में ले जाना सर्वोत्तम मंगल है।

हितवादिता के विविध प्रकार

१—कल्याणकारक वचन बोलना हितवादिता है।

२—कटु सत्य कहना भी हितवादिता है।

३—किसी को अहित के लिए वाग्जाल में न फँसाना हितवादिता है।

४—विश्वकल्याण के सिद्धान्तों का प्रसार हितवादिता है।

५—परस्त्री माता-बहन समान, परधन ईंट-पत्थर समान, सभी प्राणी अपने ही समान हैं इसका प्रचार-प्रसार हितवादिता है।

८—सन्तोष महाव्रत

वेद—सन्तोषमूलं हि सुखम्—सन्तोष ही सुख का मूल है।

अवेस्ता—आवा आजव हंम वाझमवाश लोभियों जैसा बर्ताव न करो, सन्तुष्ट बने रहो।

सन्तोष के विविध प्रकार

१—धन के लिए प्राणिद्रोह न करना सन्तोष है।

२—आवश्यकताओं पर नियन्त्रण रखना सन्तोष है।

३—उत्कोच (रिश्वत) न लेना सन्तोष है।

४—रोगी से उचित औषधव्यय लेना और विवाह आदि में पुत्र अथवा पुत्रो के लिए द्रव्य न लेना सन्तोष है।

५—अपनी शक्ति से अधिक प्रदर्शन व व्यय न करना सन्तोष है।

६—अनावश्यक परिग्रह न करना सन्तोष है।

७—धन का उचित व्यय करना भी सन्तोष है।

८—सुख-दुःख में एकसमान रूप में रहना भी सन्तोष है।

९—दम महाव्रत

वेद—इन्द्रियाणां जये योगमनुतिष्ठेद् दिवानिशम्—इन्द्रिय जय के लिए रात-दिन प्रयत्न करो।

अवेस्ता—हंमोश हुहोम-प-हुदीन वाश—चारित्र्यश्रद्धा में सुदृढ़ बन कर इन्द्रियजयी बनो।

भगवान् बुद्ध—चक्खुना संबरो साधु वाचाय। संवरो मनसा संवरो साधु-साधु संवत्थ संवरो—मन, वाणी एवं सब इन्द्रियों से संयमी होना अति सुन्दर है।

दम—(इन्द्रिय-संयम) के विविध प्रकार

१—इन्द्रियों को निषिद्ध कार्यों में न जाने देना दम है।

२—इन्द्रियों को उचित कार्यों में लगाना दम है।

३—मद्यपान और मांसभक्षण न करना भी दम है।

४—भाँग-गाँजा-तम्बाकू-जर्दा आदि का त्याग भी दम है।

५—किसी प्रकार की भ्रान्ति से किसी पर मिथ्यारोप न लगाना दम है।

६—सब मतों के प्रति सहअस्तित्व की भावना दम है।

७—विदेशी वस्तुओं को यथाशक्य व्यवहार में न लाना दम है।

१०—आस्तिकता महाव्रत

वेद—श्रद्धां भगस्य मूर्द्धनि—आस्तिकता सब सौभाग्य की जननी है।

अवेस्ता—नोईत अयस्तवाने दए नाम नोईत, अस्तचनोईत व ओवस्वा वी उर्वी स्यात्—मेरी हड्डी और बुद्धि को तोड़ डालो तो भी मैं अपने धर्म और ईश्वर का त्याग न करूँगा।

इंजील—वायामेन् वा आदोंवान् वायाक्षे वेहा लोलित सेवाका—ईश्वर में अटल श्रद्धा महान् गुणों की जननी है।

भगवान् बुद्ध—आत्मौपम्येन पश्यामि—सुख-दुःख में सबको समान मानने वाला आस्तिक है।

बाइबिल—बिलिव गाड एण्ड ही विल रिकबर दी एण्ड डाइरेक्ट बाई वे एण्ड ट्रस्ट इन हिम—ईश्वर में श्रद्धा रखो। वह तुमको पाप से बचायेगा और पुण्य-मार्ग में जाने के लिए प्रेरणा देगा।

आस्तिकता के विविध प्रकार

१—प्राणिमात्र में परमात्मा की व्याप्ति मानकर उनके साथ आत्मवत् व्यवहार करना आस्तिकता है।

२—शील और सदाचार का पालन करना आस्तिकता है।

३—क्षमा, दया, अनसूया, पवित्रता, मांगल्य, अकार्पण्य, अस्पृहा आदि आत्मगुणों का यथावत् पालन करना आस्तिकता है।

४—किसी भी देश-काल में दूसरों को न सताना आस्तिकता है।

५—दम्भ का आचरण न करना आस्तिकता है।

६—किसी से विश्वासघात न करना आस्तिकता है।

७—आत्मचिन्तन करना आस्तिकता है।

८—हितकारक व्रतों का धारण करना आस्तिकता है।

९—मनुष्य, पशु, पक्षी आदि पर प्रहार एवं इनके साथ क्रूर व्यवहार न करना आस्तिकता है।

१०—स्वकर्तव्य का यथावत् पालन करना आस्तिकता है।

११—गन्ध आदि उपचारों अथवा मानसिक उपचारों द्वारा अपने-अपने उपासना-मार्ग से ईश्वर की उपासना करना और दूसरों के उपासना-मार्ग को हेय त्याज्य न समझना आस्तिकता है।

१२—वेद-पुराण धर्मशास्त्र आदि शास्त्रों का जनकल्याण, राष्ट्र-कल्याणहित में विज्ञवचनों पर विश्वास व पालन करना परम आस्तिकता है।

इस प्रकार इन मानवता महाव्रतों की उक्त मर्यादाओं की रक्षा से हम सभी मानवीय गुणों का आधान सरलता से थोड़े ही समय में करने में समर्थ व सफल होंगे।

विश्वहित के लिए यह समयोचित कर्तव्य आ पड़ा है कि वर्तमान क्लेशों एवं विश्वके कल्याण के निवारणार्थं सब मतभेदों को भुलाकर संगठित होकर मानवता महाव्रत के पालन द्वारा विश्व का कल्याण करने को अग्रसर बनें। विश्व के प्रथम संविधान निर्माता भगवान् मनु ने विश्वविनाश के प्रतिरोध के लिए उक्तार्थं रूप में आदेश दिया है कि इनका स्मरण रखना अनिवार्य है।

मानवता का प्रमाण

मनु का यह शास्त्रोक्त मंगलमय वचन इस प्रकार है :

मंगलाचारमुक्तानां नित्यं च प्रयतात्मनाम्।
जपतां जुह्वतां चैव विनिपातो न विद्यते ।।

इसका तात्पर्य यह है कि श्रीभगवान् का स्मरण, कीर्तन, भजन, यज्ञ, दान, जप, तप, व्रत, एकान्तवास में आत्मचिन्तन, स्थानविशेष में सामूहिक प्रार्थना, आरण्यकसत्संग, पवित्र व पुण्य ग्रन्थों का पठन, पाठन, श्रवण, जितेन्द्रिय महापुरुषों के आदर्शों का पालन का यथा-

शक्य प्रयत्न, संयम का पालन, अन्न-जल, वस्त्र और चिकित्सा से प्राणियों की सेवा, सहायता, रक्षा आदि मंगल आचरण दैवी आपदाओं के प्रतिरोधक हैं। अतः उन सभी का श्रद्धासहित निरन्तर सेवन करना, कराना कल्याणकारी है। इस प्रकार अवांछनीय सम्भाषित प्रकृति प्रकोप से बचने का उक्त सही महाव्रत प्रबल उपाय व साधन है। इसे सभी वर्ग के लोग सादर अपनायें।

भगवान् राम ने और कृष्ण ने भी उक्त मर्यादाओं के पालन व आचरण की शिक्षा ही नहीं दी है, अपितु स्वयं पालन कर दिखाया है। भगवान् विष्णु के अवतार राम-कृष्ण जो भी हैं सभी अवतारों का रहस्य मानवीय मर्यादाओं को प्रतिष्ठापित करना है, तभी तो हर कल्प में इन पुण्य अवतार सम्बन्धी तथ्य का दर्शन, चरित्रों का दर्शन वेदों में प्रकट देखा जा रहा है। जिस भूत-वर्तमान-भावी तथ्यों का वर्णन वेदों में है वह सर्वजनहिताय, विश्वकल्याणाय, विश्वबन्धुत्व एवं प्रेम अनुराग श्रद्धा भाव को बढ़ाने में प्रेरणादायक व कल्याणप्रद है। यहाँ कतिपय वेदवचनों का भगवान् राम के चरित्र व विभिन्न लीला-आचरण के सम्बन्ध में दिग्दर्शन कराने हेतु अवतारित किया जा रहा है—

अष्टचक्रा नव द्वारा देवानां पूरयोध्या।
तैर्वा हिरण्यमयः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥

(अथर्ववेद १०.२.३३)

अर्थात् आठ चक्र गोल बाजार और नव दरवाजों वाली साक्षात् देवपुरी अयोध्या नगरी है, जिसमें सुवर्णपूरित कोश स्वर्गीय-ज्योतिष् से प्रकाशित है। इस प्रकार भारतीयों के प्राण विश्वसभ्यता के आदिम स्रोत वेदों ने भी उक्त विषय में कुछ कम नहीं कहा है। वेदों में इन विषयों में इतना विस्तृत तथा स्पष्ट वर्णन प्राप्त होता है कि एक बार आश्चर्यचकित हुए बिना नहीं रहा जाता। इसी प्रकार वेदों में महाराज दशरथ के सम्बन्ध में भी वचन है—

चत्वारिंशत् दशरथस्य शोणाः (ऋ० वे० २.१.११)

अर्थ—महाराज दशरथ के शोण (लाल रंग के विचित्र घोड़े) थे।

शिवधनुषभंग के विषय में भी वेद में स्पष्ट है कि—

अहं रुद्रायधनुरातनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ।

(ऋ० १०. १२५. ६)

अर्थ—मैं ही ब्रह्मद्वेषी राक्षसों का विनाश करने के लिए रामावतार धारण कर महादेव के धनुष ज्या से युक्त करता हूँ।

इसी प्रकार राम-विवाह के सम्बन्ध में भी लिखा है—

इन्द्रः सीतां विगृह्णातु तां पूषा नु यच्छतु।

(ऋ० ३. ८. ६)

अर्थ—रामचन्द्रजी सीता को ग्रहण करें और जनकजी उसे प्रदान करें। श्री विश्वामित्र मुनि के यज्ञ की रक्षा में भी लिखा है—

विश्वामित्रो यदवहत सुदासम्। (ऋ० ३. ३. २२)

अर्थ—विश्वामित्रजी सुदास गोत्रोत्पन्न श्रीराम को लिवा ले गये।

सीताहरण के सम्बन्ध में :

जारोऽभ्येति पश्चात् (साम० उत्तरा० १५. २. १. ३)

अर्थ—रामचन्द्रजी के चले जाने पर मायावी रावण जार बुद्धि से आया।

सीता की अग्निपरीक्षा के सम्बन्ध में :

सुप्रकेतैर्द्युतिभिरग्निवितिष्ठदनुषद्भिर्वर्णैरभि : रामभस्मात्

(साम० उत्तरा० १५. २. १. ३)

अर्थ—सुन्दर चिह्नों से दीप्तिमान् वर्णों से उपलक्षित द्यूलोकसाधनभूत रामपत्नी सीतासहित अग्निदेव रामचन्द्र के सन्मुख उपस्थित हुए।

इस प्रकार संक्षेप में वेदों में रामचरित्र दिखलाने के अनन्तर हम प्रस्तुत विषय में प्रवेश करते हैं। भगवान् श्रीराम के चरित्र से मानवता महाव्रत की प्रामाणिकता एवं उपयोगिता विश्वकल्याण के लिए कभी ठुकराई नहीं जा सकती।

वस्तुतः राम के सम्बन्ध में किसी भी सम्प्रदाय, जाति, वर्ग, मत-मतान्तर में कहीं भी कुछ मानवीय गुणों की कमी नहीं बतायी गयी,

बल्कि उनके विभिन्न चरित्रों एवं आचरणों को आदर्श माना गया है। राम कथा में उसे बतलाने की आवश्यकता नहीं है। भगवान् राम आदर्श पुरुष, आदर्श बन्धु, आदर्श पति, आदर्श राजा, आदर्श शिष्य, आदर्श सखा, तथा आदर्श ही शत्रु थे तथा सभी दृष्टियों से एक आदर्श महामानव रूप में हमारे सामने आते हैं। एक शब्द में कहा जाय तो वे मर्यादा-पुरुषोत्तम थे, जिनके सभी आचरण हर काल, देश-परिस्थितियों के लिए आदर्श सिद्ध हुए हैं, जो मानवता महाव्रत के प्रवर्तक संप्रतिष्ठापक सम्बर्धक-संरक्षक भी थे जो उचित ही है।

संसार में जो भी लीला उन्होंने की वह मर्यादाओं को ध्यान में रखते हुए की। भगवान् श्रीरामचन्द्र के इस पुनीत, विमल सच्चरित्र को प्रस्तुत करते हुए आज हमें अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। आज की परिस्थिति में भी प्राचीनकाल से भारतवर्ष क्या विश्व पर जो गहरा प्रभाव श्रीराम के चरित्र का पड़ा है, पड़ता आ रहा है वह किसी से अपरिचित नहीं है। आज लाखों नर-नारी इनके पावन चरित्र को गाकर अनन्त शान्ति लाभ करते रहे हैं। आज भी भगवान् राम का चरित्र पवित्र नाम-गुण निर्जीव हिन्दू जाति में जीवन का सञ्चार करता हुआ प्रतीत होता है।

रामायण में राम के विविध चरित्रों का मानव जीवन के अभ्युत्थान के लिए क्या नहीं वर्णित है? मानव मूल्यों की रक्षा में अमित एवं अनुपम सहायता की है। रामचरित्र उस मानव जीवन की कहानी है जो स्वभावतः संसार में सभी व्यक्ति व्यतीत कर रहे हैं। वह केवल विरक्त संन्यासी-साधुओं के लिए ही नहीं, किन्तु गृहस्थों के लिए भी सञ्जीवनामृत ही है। गृहस्थाश्रमी को जिन-जिन सम्बन्धों में वास्ता पड़ता है वह सब कुछ रामायण में उपलब्ध है। गुरु, माता, पिता, भ्राता, सखा, पति-पत्नी, शत्रु-मित्र, स्वामी-सेवक गुरु-शिष्य आदि सम्पूर्ण सम्बन्धी रामायण की तरह भारत के प्रत्येक गृहस्थाश्रमी के कुछ समीप कुछ दूर रूप में मौजूद है ही। रामायण की वे सभी घटनाएँ सर्वांश में आदर्श होती हुई संसार की ही घटनाएं हैं तथा सच्ची एवं व्यावहारिक भी हैं।

अतः भारत के सभी सपूत बच्चे-बच्चे के हृदय में रामायण की घटनाएँ घर कर जाती हैं। इसी कारण धनी गरीब, सभी वर्ग के लोग इस अमृत सागर में गोता लगाते अघाते नहीं। रामायण में शारीरिक-मानसिक विकास के लिए अतिदुर्लभ बातें बतायी गयी हैं, जिन्हें रामायण के नायक ने व्यवहारतः व्यक्त किया है। भगवान् राम के शरीर शौर्य, तेज, चौड़ी छाती, विशाल बाहु, उन्नत स्कन्ध, सुडौल अवयव, हंसमुख चेहरे पर कमल के समान नेत्र वाली श्याम-वर्ण सौम्य मधुर मूर्ति—किसको आकर्षित नहीं करती ? किसे तदनुरूप सभी कुछ प्राप्त करने व बनने की प्रेरणा नहीं देती ?

शरीर के उपरान्त हमारा ध्यान मानव जीवन के प्रधान सञ्चालक मन की ओर जाता है। भगवान् राम का निर्मल मन, शान्त-स्वभाव, संसार के समस्त वैभव तथा ऐश्वर्य की अपेक्षा उन सभी अनुकरणीय प्रकृति में मिला देने की शक्ति प्रदान करता है। अनुकरण करने वाले मनुष्य के चेहरे पर जगत् की घोर से कठोर यन्त्रणायें तथा आपत्तियों के आने पर भी विषाद के चिह्न प्रकट होने में समर्थ नहीं हो सकते, ऐसा अनुकूल प्रभाव मन पर पड़ जाता है। धैर्य, उत्साह-कर्तव्यपालन सब कुछ मानो सहज स्वभाव सा बन कर सुख-शान्ति का परम साधन बन जाते हैं।

मातृभूमि यद्यपि संसार के सभी प्राणियों के हृदय में अपनी-अपनी शुद्धा भक्ति के लिए अपार अनुपम सहिष्णुता की मूर्ति है, किन्तु भगवान् राम ने तो विमाता कैकेयी के लिए उसे भी बड़ी श्रद्धा से भरत के प्रति समर्पण करने में संकोच नहीं किया। विमाता में अगाध श्रद्धा भारतीय इतिहास की अद्वितीय गाथा व कथा है, जिसकी शिक्षा आज मानव ग्रहण कर थोड़ी-थोड़ी जमीन के लिए तथा अपने निजी स्वार्थ के लिए कितना घृणित व्यवहार विमाता एवं सौतेले भाई के प्रति कर रहा है, वैसा करने से अवश्य अपने आपको सही दिशा में शीघ्र मोड़ सकने में समर्थ हो सकता है। इस प्रकार की राम की विमातृ-भक्ति, पितृभक्ति की दूसरी उपमा दुर्लभ है। विशेषतः पितृभक्ति तो रामचरित्र का मूल ही है। अपने पिता महाराज दशरथ की आज्ञा परिपालन के लिए ही उन्होंने वन के असंख्य असह्य कष्टों

का सहर्ष स्वागत किया। कितनी भक्ति, आज्ञा परिपालन की पराकाष्ठा की भगवान् राम माता कैकेयी के उस भाव को ताड़ गये जिसे कैकेयी राम के त्याग और पितृवचन-पालन पर हृदय में शंकित होकर अपने लिए प्राप्त हुए वरदानों को प्रकट करने में आनाकानी की। उस राम ने स्पष्ट कहा है कि :

अहं हि वचनाद् राज्ञःपतेयमपि पावके।
भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं पतेयमपि चाणवे॥

"हे माता ! पिता की आज्ञा से तो मैं अग्नि में कूद सकता हूँ, तीक्ष्ण विष का पान कर सकता हूँ, समुद्र में डूब सकता हूँ।" ऐसा उन्होंने पितृ-मातृ-भक्ति को आगे कर भयावह वन में सब कुछ सहा। यदि आज हर परिवार का सदस्य ऐसी मातृ-भक्ति प्रदर्शित करे, आचरण करे, तो सभी परिवार एवं गाँव, नगर, समाज सुख-शान्ति से रह कर प्रेम से चैन की बंसी बजायें इसमें कुछ भी संशय नहीं।

एकपत्नीव्रत भी भगवान् राम के जीवन-चरित्र की एक महती झलकती उत्तमोत्तम विशेषता है। जिस प्रकार भारतीय नारियों के लिए पतिव्रत धर्म का पालन आवश्यक है उसी प्रकार युवकों के लिए एकपत्नीव्रत होना भी नितान्त आवश्यक है। इसके अभाव में गृहस्थ कभी भी सुखी नहीं हो सकता। आजकल युवकगण पत्नियों से आशा करते हैं कि वे साध्वी पतिव्रता हों, किन्तु स्वयं एकपत्नीव्रत मार्ग पर नहीं चलते, न चलना चाहते हैं। उन्हें भगवान् राम के एकपत्नीव्रत रूप आदर्श चरित्र से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। यदि भगवान् राम एक चक्रवर्ती सम्राट् के अधिकार से अनेक रानियाँ रखने के अधिकारी एवं समर्थ होते हुए भी एकपत्नीव्रती बने रहे तो आज का युवक-सामान्य तो किसी भी रूप में एकपत्नीव्रत के प्रतिकूल रह कर कैसे सुखी हो सकता है ? पति-पत्नी का सम्बन्ध एक आदरणीय महत्त्वपूर्ण आदर्श सन्तति को प्रदान ही नहीं करता, किन्तु सभी में एक सभ्य समाज के संस्कार की नींव भी डालता है जिसका अमिट प्रभाव दूसरे पर भी पड़े बिना नहीं रहता।

भगवान् राम के सरल और अविचल मधुर प्रेम की इस मधुर मन्दाकिनी को निकाल कर, हम श्रद्धालु सभी महानुभावों से निवेदन उस ओर के लिए करते हैं कि जहाँ जगज्जननी जनकनन्दिनी सीता का अलौकिक प्रेम-सिन्धु अपनी उत्ताल मनोहर तरंगों से संसार को प्रेमार्द्र कर रहा है।

एक सुन्दर उपवन है। विलक्षण, विचित्र रंग-बिरंगे फूल, लहलहाती हुई कोमल लतावल्लरियाँ, मोतियों की तरह सुन्दर दिखाई देने वाली हरी-भरी शस्यश्यामला मही के गोद में पड़े अनगिनत जलबिन्दु, हरी घास की छटा को बिखरते हुए धीमी-धीमी भीनी भीनी, मीठी-मीठी हवा, विहंगों का मधुर कलरव और सुदूर तक जगत् का चंदोआ स्वच्छ नीला गगन आदि सभी को मगन करने वाला तथा उस उपवन की सभी वस्तुएँ मन को विमुग्ध कर लेती हैं।

मनोविनोद की सभी सामग्री उपस्थित है, किन्तु फिर भी एक वृक्ष की छाया में विषण्णवदन जनककुमारी मौनभाव से अपने गम्भीर चिन्तन में व्यस्त बैठी हुई हैं। उनका ध्यान सामने गुञ्जार करते हुए भौंरों पर लगा हुआ है। सहसा उनके भोले-भाले चेहरे पर मुस्कान की मन्द रेखाएँ खींच उठीं और उस विषाद की अलक्षित भावनातरंग में समा गयीं। पास में बैठी हुई त्रिजटा की ओर अपनी चिन्तापूर्ण दृष्टि डालती हुई कहने लगीं—हे त्रिजटे !

कीटोऽयं भ्रमरी भवत्यतिनिदिध्यासैर्यथाऽहं तथा।
स्यामेवं रघुनन्दनेति त्रिजटे दाम्पत्यसौख्यं गतम् ॥

इसका आशय यह है कि मेरे देखते ही देखते यह कीड़ा भ्रमरावली की मधुर गुञ्जार से आकर्षित हो उन्हीं के सतत (निरन्तर) चिन्तन से भ्रमर बन गया है। यदि कदाचित् रघुकुलकुमुद भगवान् के गम्भीर चिन्तन से मैं भी राम बन गयी तो हमारा दाम्पत्य सुख ही चला जायेगा।

त्रिजटा सीता के उस अलौकिक प्रेम से खूब परिचित थी। उसी प्रेम के कारण उपस्थित हुई सीता की इस चिन्ता को देख उसने उत्तर दिया—भोली मिथिलेशनन्दिनी सीते !

शोकं मा वह मैथिलेशतनये ! तेनापि योगः कृतः ।
सीता सोऽपि भविष्यतीति सरले तन्नों मतं जानकी ॥

अर्थात् हे सीते ! तुम इसकी चिन्ता मत करो। तुम यदि प्रभु का अविरत चिन्तन करती हो तो क्या वह तुम्हारी ओर से बेसुध हैं। वे राम भी तुम्हारे ही ध्यान में अपने दिनों को किसी प्रकार बिता रहे हैं। यदि तुम राम बन गयीं तो वह भी अवश्य ही सीता बन जायेंगे, अतः वह दाम्पत्यसुख तो बना ही रहेगा।

भ्रातृप्रेम का जो आदर्श भगवान् राम ने हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया है वह विश्व इतिहास की अनोखी उपलब्धि है। प्रायः संसार में सौतेले भाई की नहीं पटती, किन्तु भगवान् राम इसके ज्वलन्त प्रवाद और अपवाद हैं। इससे वही उत्तम शिक्षा मिलती है। प्रजाराधन का उदाहरण राम के अतिरिक्त अन्यत्र अन्य में दुर्लभ है। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का जन्म उस पवित्र इक्ष्वाकु वंश में हुआ था जो कई युगों तक संसार के ऊपर शासन करता रहा। भगवान् राम में जहाँ अन्य अगणित गुणों का पर्याप्त विकास था वहाँ सुयोग्य सम्राट् के लिए अनिवार्य रूप में परमावश्यक प्रजानुरञ्जन गुण तो प्रजारा-धन की सीमा तक पहुँच गया था अर्थात् वे केवल नृपति की तरह प्रजा का पालन ही नहीं करते थे, अपितु प्रजा को इष्टदेव समझकर एक सद्भक्त की तरह उसके लिए अपना सर्वस्व न्योछावर करने को तैयार रहते थे। श्रीराम ने प्रजाराधन के असिधारा व्रत को अपना सर्वस्व गंवाकर भी निभाया है।

राजा का कर्तव्य राज्य ऐश्वर्य के मद में झूमते हुए विलास भोगों में पड़े रहकर अपने जीवन को नष्ट करना नहीं, किन्तु प्रजा की रक्षा करते हुए उसे प्रसन्न रखते हुए अपने राज्य को समुन्नत बनाना होता है। श्रीरामचन्द्र जी ने प्रजाराधन का जो अनुपम उदाहरण सबके सामने प्रस्तुत किया है उससे सभी शासकों की आँख अवश्य खुल जाती हैं कि किस प्रकार प्रजा के प्रति शासक राजा का कर्तव्य होता है। श्रीराम ने दश मास तक रावण के अधीन लंका में रखी गयी तथा अग्नि परीक्षा में पवित्र घोषित की गयी मात्र प्रजाराधन

के लिए प्राणप्रिया सीता का परित्याग करने में कुछ भी संकोच नहीं किया। अब उससे अधिक प्रिय कौन सी वस्तु हो सकती है ? इससे यह सिद्ध है कि श्रीराम वे आदर्श पुरुष हैं जो प्रजा की प्रसन्नता, सुख, शान्ति के लिए सर्वस्व त्यागने में अद्वितीय अनुपम हैं। यह रामायण आदि सद्ग्रन्थों से मानवमात्र को मर्यादा की रक्षा के लिए सीखना चाहिए। श्रीराम ने तो यह सत्य ही कहा है कि उन्हें प्रजाराधन के लिए किसी भी वस्तु को त्यागने में कोई व्यथा नहीं हो सकती।

स्नेहं दयाञ्च सौख्यञ्च यदि वा जानकीमपि ।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ॥

अर्थात् स्नेह, दया, सौख्य तथा जानकी को भी लोक के आराधन (प्रसन्नता) के लिए छोड़ते हुए कुछ भी व्यथा नहीं है। श्रीराम ने सम्पूर्ण प्रजा को अपने परिवार की तरह ही समझा।

पौरान् स्वजनवन्नित्यं कुशलं परिपृच्छति ।

श्रीराम प्रतिदिन नगरवासियों से अपने स्वजनों की भाँति कुशल पूछा करते थे। भगवान् के इस उदार व्यवहार से स्वभावतः प्रजा वर्ग पूर्ण प्रभावित था। इसीलिए सभी पुरवासीजन भी भगवान् राम की कल्याण कामना को अपने नित्यकर्म में सम्मिलित कर लिया था : जैसा कि रामायण में स्पष्ट उल्लेख है :

स्त्रियो वृद्धास्तरुण्यश्च सायं प्रातः समीहिताः ।
सर्वान् देवान्नमस्यन्ति रामस्यार्थे मनस्विनः ॥

प्रजा वर्ग की सम्पूर्ण स्त्रियाँ वृद्ध युवक युवतियाँ आदि प्रतिदिन दोनों समय सायं-प्रातः श्रीरामचन्द्रजी के कल्याण के लिए देवताओं को प्रणाम कर प्रार्थना करती थीं।

यह गाथा थी किसी समय स्वर्गयुगीन भारत में राजा तथा प्रजा के सम्बन्ध व अवस्था को उजागर करने वाली। इस प्रकार प्रजा-प्राण राजा तथा राजभक्त प्रजा के इस अपूर्व पवित्र सम्मेलन में जिस राज्य की सृष्टि हो सकी थी वह था रामराज्य। जिसका स्मरण कर आज हम भारत के अतीत वैभव के मधुर गीत गाते हैं।

मैत्री, शरणागतपालन की भावना व उसका निर्वाह जो भगवान् श्रीराम ने कर दिखाया है उसकी उपमा अन्यत्र दुर्लभ है। भगवान् राम ने सुग्रीव से जो मित्रता स्थापित की थी उसे उन्होंने अन्त तक स्मरण रखा। सुग्रीव की व्यथा को सुनकर उनका हृदय पिघल गया। वे उनके कष्टों को दूर करने के लिए बेचैन हो जाते हैं और जब तक सुग्रीव को उस पद पर बिठा नहीं देते तब तक उनके हृदय को शान्ति नहीं मिलती। यदि मित्र की विपत्ति में भी मनुष्य शान्त बैठा रहे तो उस मैत्री का मूल्य ही क्या ? वैसे ही मनुष्य अपने जीवन में श्रीराम की मैत्री-भावना व मित्र के प्रति कर्तव्यपालन का व्रत ले ले तो सभी दिशाएँ मंगलमय बन जायँ।

शरणागत विभीषण के प्रति भगवान् श्रीराम की सभी भावनाएँ, मर्यादाएँ कर्तव्यपरायणता लोक में जब तक सूर्य-चन्द्र हैं शिक्षा प्रदान करती रहेंगी। प्रभु शरणागतवत्सल हैं। जो मनुष्य सांसारिक माया-मोह को छोड़कर सच्चे हृदय से एक बार भी उनकी शरण में आ जाता है, फिर तो भगवान् सदा उसकी रक्षा करते हैं। उसके लिए हर क्षेत्र में स्वयं प्रभु चिन्ता करते हैं तथा योगक्षेम का निर्वाह करते हैं। शरणागतवत्सल प्रभु शरणागत विभीषण को अभयदान तथा लंकाधिपति पद पर राजतिलक करने पर सुग्रीव ने कहा कि विभीषण की तरह रावण भी शरण में आ गया तो फिर लंकेश शब्द का निर्वाह किस प्रकार होगा ? प्रभु ने कहा—'सुग्रीव ! मैंने जो कुछ कहा वह कह चुका; वह असत्य कभी नहीं हो सकता, फिर भी यदि रावण भी शरण में आ गया तो लंकेश ही रहेगा। भाई भरत को समझा कर अयोध्या का विशाल साम्राज्य रावण को प्रदान कर दूँगा। उस शरणागतवत्सल प्रभु के यह शब्द आज भी लाखों प्राणियों को उनकी शरण में आने के लिए भगवान् श्रीराम का शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक तथा आध्यात्मिक गुणों का परिपूर्ण विकास आदर्श है। जिनका अनुशीलन एवं अनुभव कर अपने आपको उदात्त गुणों से युक्त कर जीवन धन्य कर सकता है।

यद्यपि भगवान् श्रीराम पूर्ण व शुद्ध सच्चिदानन्दमय थे, पूर्ण ब्रह्म थे, लोक में सम्पूर्ण गुणों का उन्हीं से उद्भव होता है फिर भी हमारे

सामने वे एक मनुष्य की भाँति ही प्रकट हुए व इसी रूप में उन्होंने अपनी सम्पूर्ण लीलाएँ की तथा समस्त उत्तम, उदात्त, उदार चरित्रों का आचरण कर लोकव्यवहार की सम्यक् रूप में मर्यादित परम्परा पालन पवित्र एवं पूर्ण उपयोगी शिक्षा प्रदान की है, प्रायः हर क्षेत्र में ईश्वरीय शक्ति आश्रय लिए बिना ही मानवीय सद्गुणों के आधार पर प्रजा, शत्रु-मित्र, परिजन आदि सभी को आत्मसात् कर लिया व कर दिया। सभी पर अमिट प्रभाव छोड़ दिया जो हर मानव के लिए उनके एक-एक चरित्र परछाईं की तरह साथ अनुभूत होता है जिसका ध्यान देकर अनुगमन किया जाय तो कोई भी मनुष्य अपने को किसी सद्गुणों से रहित नहीं महसूस करेगा, क्योंकि हर पल सर्वत्र व्यापक रूप में भगवान् के अमोघ गुणराशि उनके सामने तथा हृदय में बाहर-भीतर सभी दशा में प्रत्यक्ष-सा व्यक्त है तो मनुष्य महामानव बनने में क्यों कसर रख सकता है। भगवान् राम के उक्त चरित्रों की यह बड़ी विशेषता है कि अनायास हमारे हृदय को आकृष्ट कर ही लेती है। उससे अछूता कोई भी मानव रह नहीं सकता।

यद्यपि भगवान् श्रीराम का समय लाखों वर्ष व्यतीत हो चुका है फिर भी उनके चरित्रों, व्यवहारों में वह अद्भुत सरसता, मधुरता, देदीप्यमान आकर्षक शक्ति प्रभाव आज भी सद्यः प्रकट सा मालूम होता है। संसार में हर प्राणी उनके नाम-गुण चरित्र के स्मरण कीर्तन ध्यान से प्रतिक्षण उनमें नवीनता का अनुभव करता है। वह विमल पवित्र अनुभूति तथा भगवान् श्रीराम का पावन नाम हमारे मानवसमाज के विमल जीवन का आदर्श अलक्ष्य प्रतीक बन गया है। वे श्रीराम आराध्य हैं, चिन्त्य हैं और सत्यं शिवं सुन्दरम् की प्रशान्त परिधि हैं।

यदि हम सभी लोग आपस का भेदभाव मिटाकर अपना व अपने इस विशाल पवित्र भारतभूमि व राष्ट्र का अभ्युदय के वस्तुतः अभिलाषी हैं तो रागद्वेष को दूर कर शरणागतवत्सल मर्यादा-पुरुषोतम भगवान् को कभी न भूलें। उन्हें ही पुकारें। उनके एक-एक आचरित चरित्र मानवता के महामन्त्र परमविज्ञान बनकर हर

प्राणी को वरदान साबित होंगे। भगवान् श्रीराम के अंश कण से संजोए सन्देश महापुरुषों को वाणी द्वारा व्यक्त शब्द भी मानवता के लिए हृद्य हैं :

१. भगवान् राम ने श्रीकृष्णावतार में नरक के तीन दरवाजे व्यक्त किये हैं—काम, क्रोध व लोभ।
अन्य महापुरुषों के वचन भी अनुसन्धेय हैं :—

२. जो ज्ञान आचार रूप में व्यक्त न हो वह केवल भार है।
—जगद्गुरु श्री रामानुजाचार्य।

३. भारत की सबसे बड़ी सम्पत्ति उसकी आध्यात्मिक निधि है। सब कुछ खोकर भी उसकी रक्षा करनी चाहिए।
—जगद्गुरु श्री शंकराचार्य।

४. मैं और तू, मेरा और तेरा इस भाव को निकाल कर तथा ईश्वर को लक्ष्य बिन्दु मान कर जीवन यापन करने वाला ही श्रेष्ठ मानव है। —जगद्गुरु श्री वल्लभाचार्य।

५. समस्त विश्व में एक ही तत्त्व ब्रह्म है, दूसरा कोई तत्त्व नहीं है। जिनको एक से दूसरा दीखता है वे संसार में समानता कभी नहीं ला सकते। —जगद्गुरु श्री वल्लभाचार्य।

६. जीवात्माओं के उद्धार के लिए यदि मुझे नरक में जाना पड़े तो स्वीकार है। —जगद्गुरु श्री रामानुजाचार्य।

७. दुःख पाप का ही परिणाम है। —भगवान् बुद्ध

८. ईश्वर के नाम तो अनेक हैं, पर एक ही नाम ढुंढे तो वह है सत्य। इसलिए सत्य ही ईश्वर है। —महात्मा गांधी।

९. आलस्य एक प्रकार की हिंसा है। —महात्मा गांधी।

१०. कठिनाइयाँ हमें आत्मसात् कराती हैं।
—पं० जवाहरलाल नेहरू।

११. असत्य में शक्ति नहीं होती, उसे अपने अस्तित्व के लिए सत्य का आश्रय लेना पड़ता है। —सन्त बिनोबा भावे।

१२. संभव असम्भव से पूछता है कि तुम्हारा निवास स्थान कहाँ है ? उत्तर मिलता है कि नामर्द के सपनों में।
—रवीन्द्रनाथ ठाकुर।

१३. आजादी की तड़क आत्मा का संगीत है।
—सुभाषचन्द्र बोस।

१४. जब तक कामिनी व काञ्चन का मोह नहीं दूर होता ईश्वर के दर्शन हो ही नहीं सकते। —स्वामी रामकृष्ण परमहंस।

१५. संसार में इन चार अंगों का प्राप्त होना बड़ा कठिन है। मनुष्यत्व, धर्मश्रवण, श्रद्धा और संयम में पुरुषार्थ।
—महावीर स्वामी।

१६. कुशाग्रबुद्धि महान् कार्य को आरम्भ करती है, पर परिश्रम उन्हें पूर्णता प्रदान करता है। अतः परिश्रमी बनो।
—अज्ञात।

१७. गुणों को खोजना हों तो दूसरों में ढूंढो। दोषों का परख करना हो तो अपने में ही तलाशो।
—अज्ञात।

१८. संग्रह करना हो तो सद्गुणों का ही करो।
—अज्ञात।

१९. परित्याग करना हो तो दुर्गुणों का ही करो।
—अज्ञात।

२०—जीना चाहते हो तो दूसरों के जीने के लिए उपाय सोचकर पूर्ण सहायता करो। —अज्ञात।

२१—मरना चाहते हो तो अपने लिए ही जियो। —अज्ञात।

इन उपर्युक्त सभी सदुपदेशों को यथाशक्य जीवन में उतारकर मानवता महाव्रत को पूरा करना मनुष्य शब्द का सरल व उपयोगी जन्मजात सिद्ध अधिकार व अर्थ है। इसे कभी भी मत भूलो यही सच्चा मित्र, सुख, शान्ति, वैभव संसारभय नाशन हेतु उत्तम व सरस भरपूर मधुर औषध है। इसे प्राप्त कर ही रहे। यही महान् यज्ञ है। यही तपस्या है, यही त्याग की पराकाष्ठा का सहज सोपान है। ध्यान रहे।

विवेकशील प्राणी सत्संस्कार के उदय होने पर भगवान् की प्रेरणा से जब अध्यात्म-विषय की ओर मुड़ता है, सोचता है तब उसे उस तरफ सही रूप में पहुँचने के लिए परमेश्वर की आराधना के उस ध्यान में लग जाना स्वाभाविक हो जाता है। परन्तु वहाँ उस अवस्था में भी प्रश्न स्वभावतः उठता है कि अध्यात्म विषय की शिक्षा कैसे कहाँ से प्राप्त की जाय ? जिससे उसकी जानकारी विधिवत् हो सके। इन विषयों का सरल व प्रथमतः समाधान है भगवान् में श्रद्धा व विश्वास। बिना श्रद्धा एवं विश्वास के कोई भी पदार्थ अच्छी तरह समझ में नहीं आता और आध्यात्मिक ज्ञान की प्रगति व लाभ में श्रद्धा एवं विश्वास छोड़कर एक कदम भी आगे बढ़ना असम्भव है। इस विषय में कितना सुन्दर निरूपण महात्मा तुलसीदास ने रामायण में किया है :

भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां बिना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम् ॥

अर्थात् श्रद्धा और विश्वास स्वरूप श्रीपार्वतीजी और भगवान् शंकरजी की वन्दना करता हूँ जिनके बिना अर्थात् श्रद्धा और विश्वास के बिना सिद्ध महापुरुष भी अपने हृदय मन्दिर में स्थित ईश्वर को नहीं देख पाते हैं।

जैसे सिद्ध पुरुष भी ईश्वर को हृदयदेश में अन्तर्यामी रूप में नित्य विराजमान को नहीं देख पाते बिना श्रद्धा व विश्वास के, उसी प्रकार से उस परमात्मा के या परमात्मा में रहने वाले लोककल्याणकारी आत्म-कल्याणकारी अनन्त अमोघ दिव्यगुणों को भी नहीं देख

पाते। जो सत्य संकल्प-सत्यकाम दयावान दाक्षिण्य-वात्सल्य प्रभृति हैं, उनके अभाव में प्राणी अपने आप से ही प्रेम नहीं कर सकता तो दूसरों से प्रेम व्यवहार एवं दूसरों के प्रति दया, परोपकार आदि बर्ताव करने में समर्थ कैसे हो सकता है सामान्य प्राणी ? इसी लिए ही अपने कल्याण एवं दूसरों के कल्याण के लिए भी हर अवस्था में अध्यात्मज्ञान प्राप्त करना बहुत ही उपयोगी है। सर्वप्रथम अपने आपको तो सुखी बनाना हर मनुष्य चाहता ही है। उसके लिए भी उसे सम्पूर्ण वेद-वेदान्त पुराण आदि महान् ग्रन्थों को पढ़ना उतना अनिवार्य नहीं है जितना उसे सारांश रूप में थोड़े समय में सरल ढंग से समझ लेना है। जैसे कँवल रोग (पीलिया) से ग्रसित पुरुषों का उदाहरण है :

किसी महात्मा के पास उक्त रोग से ग्रसित दो व्यक्ति गये (उस रोग के कारण आँखों से सबकुछ पीला दिखायी देता है ही) महात्मा ने एक सफेद शंख दिखाकर पूछा कि इस शंख का रंग कैसा है ? दोनों रोगियों ने शंख का रंग पीला बताया। महात्मा ने उन्हें बताया कि संख तो सफेद है, तब भी दोनों को महात्मा की बात नहीं जमी कि शंख पीला नहीं सफेद है। घर जाकर एक व्यक्ति ने विचार करना शुरू किया कि मुझे शंख तो पीला ही दिखाई दिया तब महात्मा कैसे उसे सफेद बताते हैं। यह कैसी विडम्बना है ? मैं अपनी आँखों का विश्वास करूँ या महात्मा की बात का। यह बात किसी से सुनी सुनाई तो नहीं है कि शक की कोई गुंजाइश भी की जाय। जब मैंने अपने आँखों से उसे पीला ही देखा तो सफेद शंख कैसे मानूँ ?

दूसरे रोगी ने भी घर जाकर सोचा कि मुझे शंख पीला दिखाई दिया, महात्मा उसे सफेद कहते हैं। इसमें अवश्य कोई रहस्य है, क्योंकि महात्मा का झूठ बोलने में क्या स्वार्थ है ? कुछ गड़बड़ी कहीं जरूर है। सम्भव है मेरी आँखों में कोई विकार आ गया हो। अतः किसी चिकित्सक से जाँच करानी चाहिए। यह उसकी चिकित्सक के प्रति ही नहीं महात्मा के प्रति भी श्रद्धा हुई और प्रयत्न किया औषध के लिए। उसे प्राप्त कर सेवन करने से रोग दूर हुआ। तब वही शंख उसे सफेद दिखाई पड़ने लगा।

इसका तात्पर्य यही है कि उन दोनों रोगियों में से एक को प्रथम की उक्त महात्मा में श्रद्धा और विश्वास नहीं था। इसलिए अपना रोगग्रस्त आँखों पर ही भरोसा रखा। दूसरे रोगी के मन में महात्मा में ही विश्वास श्रद्धा हुई, अपनी आँखों पर नहीं। इसलिए उसने चिकित्सक पर भी विश्वास श्रद्धा रख कर उपचार किया, रोगमुक्त हुआ। यह उदाहरण भी यही प्रमाणित करता है कि सबसे पहले श्रद्धा व विश्वास आवश्यक है। यदि सर्वज्ञाता अपने ही में मान कर गलत वस्तु को सही व सही को गलत साबित करने लगे तो बड़ा ही अनर्थ हो जायेगा।

अतः मन को एकाग्र कर आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना जरूरी है। मन की चञ्चलता तो वायु से भी अधिक बतायी गयी है। उसे अभ्यास कर कामनाओं के संकल्प जाल से अध्यवसाय रोककर प्रतिक्षण में सर्वत्र परमात्मा की सत्ता की विभूति का अपने में सभी प्राणी में अनुभव करना चाहिए। अभ्यास व विषयों से वैराग्य प्राप्त करना अनिवार्य है, क्योंकि अभ्यास व वैराग्य ही दो जंजीरें हैं, जो मन को बाँधकर ईश्वरीय गुणों सच्चरित्रों व सद्व्यवहारों की ओर मोड़ती हैं, जिसे बड़े बड़े ज्ञानी मनीषि महापुरुषों ने भी स्वीकार किया है मन कौन सी वस्तु है ?

मन अन्तःकरण की एक अवस्था विशेष है। इसकी न कोई आकृति है न इसे मापा ही जा सकता है। न तो मन को तौला ही जा सकता है। शरीर में यह बहुत ही सूक्ष्मातिसूक्ष्म वस्तु है। यों कहा जाय कि मन जड़ है उसमें चेतना नहीं है इसी लिए निश्चेतन पदार्थ है, किन्तु अत्यन्त सूक्ष्म होने पर भी इसमें शक्ति असीम है। इसी लिए मन का वेग वायु और प्रकाश की गति से भी अधिक है। यह विज्ञानप्रधान युग है। इस युग में अणु में भी जो अपरिमित शक्ति की खोज सफल हुई है उसी तरह मनःशक्ति की भी बात है निःसीमता में। जो भी कार्य बहुत ही बड़े परिश्रम से पूर्ण हो सके उसे मन ही मन में अतिशीघ्रता और विना किसी प्रयास व कष्ट के ही पूर्ण किया जा सकता है। कौन ऐसा कार्य संसार में है जिसे मन से (मन ही मन) पूरा न किया जा सके ?

यह भी एक तथ्य है कि मन अपरिमित शक्तिशाली होने के साथ-साथ एक खूबी भी रखता है कि जो वाह्य इन्द्रियों से सुनाई दिखाई पड़ता है, रूप रस स्पर्श गन्ध आदि सब कुछ ही पूर्ण रूप में जो इन्द्रियों से साक्षात्कार होता है उन सभी का दृढ़तम छाप, प्रभाव संस्कार रूप में मन पर भी पड़ता ही है यह छाप भी केवल एक ही जन्म की ही नहीं होती, किन्तु कई जन्मजन्मान्तरों की छाप मन पर अंकित रहती है। जैसा कि ऊपर उसे अन्तःस्थ अवस्थाविशेष रूप में व्यक्त किया जा चुका है। जिसका अन्तःकरण माना गया है मन वह जीव अनादिकाल से किन-किन योनियों में जन्म ग्रहण कर चुका है जिस-जिस योनि में इस जीव ने जन्म लिया है उसने उस योनि में जो-जो कार्य किया है उन सभी की छाप मन पर पड़ी हुई है। यदि किसी में सामर्थ्य हो तो पूर्वजन्मों की वातों की मन पर पड़ी हुई छाप को पढ़ सके तो उसे मालूम हो जयेगा कितनी छापें उस पर पड़ चुकी हैं, उन्हीं छापों को संस्कार भी कहते हैं, वे संस्कार अच्छे या बुरे दो तरह के होते हैं जिनके परिणाम- फल रूप में कुछ अच्छे कार्य देखे सुने गये हैं। उनके अच्छे संस्कार बने हैं, जो बुरे कार्य देखे एवं सुने गये हैं उनके बुरे संस्कार बने हैं। यह सभी बातें लोक में हर मानव प्राणी अपने अपने व्यवहार एवं आचरण से व्यक्त करते हुये दृष्टिगोचर हो रहे हैं यही प्रमाण भी है। सत्यता की प्रामाणिकता ज्यादा लोक-व्यवहार से हर मानव स्वीकार करता भी है।

ऐसी दशा में यह भी सत्य है कि उक्त ढंग से मन पर संस्कारों का इतना बड़ा बोझ लदा हुआ है कि उसका अनुमान करना भी कठिन ही नहीं असम्भव भी है। इन्हीं संस्कारों के कारण ही मन में स्थिरता का अभाव रहता है, जिससे सदा वह चञ्चल रहता है। यदि उक्त पुराने संस्कारों का बोझ मन के ऊपर से उतार दिया जाय और नये कुत्सित संस्कार उस पर न पड़ने दिये जायें तो मन को स्थिर करने में कुछ भी कठिनाई नहीं होगी। परन्तु पुराने संस्कारों को मिटाने के लिए प्रयत्न करते हुये भी नवीन संस्कारों का पड़ना वन्द न हो तो संस्कारों की माया के भार से कभी भी छुटकारा पाना कठिन ही है।

जैसे खोदे गये कुएं में स्रोत से नया जल न आने पर तो उसे सुखाना आसान है किन्तु स्रोत से जल प्रवाह चालू होने पर सुखाना कथमपि सरल नहीं है इसी तरह मन पर पड़े संस्कारों में जब तक नये संस्कारों का जुड़ना नही रुकता तब तक उन्हें समाप्त नहीं किया जा सकता है। इसीलिये मन पर नये संस्कार न पड़ने देकर अर्थात् नये संस्कारों कों रोक कर पहले पुराने संस्कारों को धीरे-धीरे समाप्त करना चाहिये। उसकी समाप्ति के लिये हर सम्भव कोशिश करनी चाहिये।

मन पर पुराने संस्कारों को मिटाने या ढकने तथा नवीन संस्कारों के पड़ने को रोकने या पर्दा रूप में आवृत्त करने का सरल एवं सत्य उपाय यह है कि सभी कुछ प्रत्यक्ष-परोक्षभूत वर्तमान-भविष्य जो भी जगत सत्ता है वह भी परमात्मा का शरीर है जगत् में जो कुछ हो रहा है उसी की लीला है। सभी प्राणी उसी के अंश-किरण शेष हैं। सभी अपने ही परिवार हैं, कोई भी दूसरा नहीं है। वस्तुतः कुछ संकुचित स्वार्थवश जिसे अपना समझते हैं जिस वस्तु को अपनी वस्तु समझते हैं वह सभी प्राणी व वस्तु ईश्वरीय हैं। मैं भी ईश्वरीय हूं। मेरी भी वस्तु ईश्वरीय है। इस प्रकार सबका सब कुछ ईश्वरीय दायित्व के अन्तर्गत है तो कौन मित्र कौन शत्रु, अपना पराया भाव प्राणी में व वस्तु में जो है वह वास्तविक नहीं है। ऐसा मान कर सभी वस्तुओं से सभी स्वजनों से जिसे लोक में अपना मानते हैं, रहने का कर्तव्यपालन मात्र निर्वाह करें तो निश्चय ही परस्पर का वैरभाव ईर्ष्याद्वेष, दुरभिमान, हिंसा, लूट-पाट, छल-छिद्र आदि कुत्सित कर्मों का त्याग स्वभावतः हो जायेगा। एक दूसरे के सुख-दुःख में साथी बन जायेंगे। मन की एक ही वृत्ति बन जायेगी। सब कुछ सुनकर देख-कर जानकर भी भागवत भाव भगवान् के सभी हैं, सभी वस्तु हैं। एक ही छाप का मन पर पूर्ण प्रभाव दृढ़ता से पड़ जायेगा जिससे पुराने सभी संस्कार दब जायेंगे ढंक जायेंगे, नये भी संस्कार तब तक प्रभाव नहीं जमा पायेंगे, जब तक पुराने कुत्सित संस्कार मिट नहीं जाते। यह बड़ी उपलब्धि होगी जो मानवता महाव्रत की कुञ्जी है।

'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः' इस सूक्ति के अनुसार स्पष्ट है कि मन ही मनुष्य के बन्धन व मोक्ष का कारण है। बन्धन चाहे संसारी विषयों में भटकना व फंसना रूप हो, मोक्ष भी संसार के जन्म मरण के चक्र से मुक्त होने का हो, मुक्तिधाम (वैकुण्ठधाम) प्राप्ति रूप हो, या जब तक संसार में रहना तब तब काम, क्रोध, ईर्ष्याद्वेष, लोभ, मद, मात्सर्य आदि के कारण अनेक प्रकार के शारीरिक मानसिक कष्ट रूप बन्धन हो और मुक्ति भी इन सभी अज्ञानजन्य दुष्प्रवृत्तियों से निकलता रूप हो, जिससे संसार में यावत् उचित योगक्षेम के अनुरूप सुख-शान्ति का स्वयंभागी बनना हो या दूसरों को भी बनाना हो। यह भी सावधिक जीवनकाल में मुक्ति ही है।

जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, अपने लिये जीवन-यापन मात्र किसी प्रकार करता हुआ जीना मनुष्य का वास्तविक जीवन नहीं है, किन्तु अपनी ही तरह दूसरों को भी सुख-शान्ति प्राप्त कराना या सुख शान्ति में देखना, सहयोग देना, उनके दुःख-सुख में साथी होकर जीवन-यापन करना, महत्वपूर्ण जीवन जीना माना गया है।

महाभारत में कितनी सुन्दर सूक्ति मानवताव्रत के अभियान में यथार्थ है कि

इदंहि धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकुलानि परेषां न समाचरेत्॥

अर्थात् यह सबसे बड़ा महान् धर्म है, धर्मसर्वस्व है कि जो वस्तु व व्यवहार किसी के आचरण किसी के अपने प्रतिकूल हों वे दूसरों के दूसरों के लिए वैसा प्रतिकूल आचरण कदापि न करे। जैसे दूसरे द्वारा किसी प्रकार का अभद्र व्यवहार व अनाचरण अपने लिए हर मनुष्य प्रतिकूल समझता है वही दूसरों के लिए भी प्रतिकूल समझ कर उसका सर्वथा परित्याग करना चाहिए।

इस बात का सदा स्मरण रखना चाहिए कि किसी को मेरे द्वारा शारीरिक-मानसिक कष्ट न हो, न तो मन से भी किसी को कष्ट

पहुँचाने का संकल्प करे। उसका आचरण तो दूर रहा। ऐसा यदि सभी मनुष्य सोचकर पग-पग पर चलने का ध्यान रखें तो अनायास हो परस्पर का मनोमालिन्य मनमुटाव दूर हो जाय, मन पर अपने आप काबू जब लोकव्यवहार में भौतिक जगत् में हो जायेगा, तो आध्यात्मिक जगत् में भी काबू पाना सरल हो जायेगा। भौतिक सुख के त्याग में ही भौतिकता पर विजय पाना होता है। भौतिक सुख का त्याग का यह भी अर्थ है कि योगक्षेम निर्वाहार्थ आश्रित जनों के रक्षणार्थ सत्पुरुषार्थ द्वारा हो अर्थागम करना न्याय्य है, यथाशक्य जो प्राप्त हो गया उसी में सन्तुष्ट भी रहना तथा दूसरे असहाय को भी यथासम्भव दयाकर उपकार से सुख पहुँचाना है। जव सभी प्राणी ईश्वर के ही अंश जीव हैं तो उनके लिए जो भी त्याग होगा, दया-दान परोपकार रूप में इसे ईश्वर की ही प्रजा-सेवा आराधना समझनी चाहिए। ऐसा भाव बन जाय हर प्राणी के प्रति तो मनुष्य मानवता की रक्षा करने में पूर्ण समर्थ हो जाता है, उसका जीवन भी सार्थक व धन्य हो जाता है। आज राष्ट्र में सभी जगह जो भी हिंसा, लूट-पाट जिस किसी भी तरह की भावना दिखाई पड़ रही है। जगह-जगह जो भी अशान्ति का वातावरण, भय की स्थिति बनी हुई है वह कुछ समय में शीघ्र शान्त हो सकती है यदि उन सभी सद्गुणों को अपने में आधान करें, जिन्हें भगवान् राम, महात्मा बुद्ध और अनेक सभ्य महापुरुषों ने आचरण कर दिखाया है।

खुशी का, शान्ति का वातावरण बनाने का आरम्भ सर्वप्रथम अपने परिवार से करें। जीवन में ढाले तो पुनः उनका प्रभाव गाँव में होगा, गाँव से राज्य में। इस प्रकार पूरे देश में मानवता का जागरण सम्भव है। इस विषय में पुनः स्मरण कराना उचित ही है कि हर परिवार का नवयुवक अपने माता-पिता, भ्राता, पत्नी, सखा, गुरु आदि के साथ कैसा बर्ताव करे ?

इस प्रसंग में केवल राम के चरित्र का अनुकरण किया जाय तो वास्तव में परिवार खुशहाल हो जाय। प्रेमभाव, सद्व्यवहार, सदाचरण का वर्ताव अपने परिवार से शुरू कर दूसरे के साथ भी व्यवहार का उपदेश प्रभावशाली होता ही है। जिस तरह भगवान्

राम ने माता कैकेयी को विमाता जानते हुए भी पिता श्रीदशरथ से दो वरदान रूप में माता ने भरत को राज्य तथा राम को चौदह वर्ष का वनवास जानकर निःसंकोच बड़ी श्रद्धा-भक्ति से स्वीकार किया। किसी प्रकार का तर्क-वितर्क नहीं किया। यह भगवान् राम की माता-पिता के प्रति अगाध भक्ति तथा उनके आदेश का पालन करना एक सत्पुत्र का परमकर्तव्य तथा भरत भाई ही राजा बनें इसमें किसी प्रकार का कलह प्रदर्शन न कर सहर्ष स्वीकार कर एक भ्रातृप्रेम का तथा उसके प्रति राज्य प्रदान कर महान् त्याग का भी आदर्श प्रस्तुत किया जो हर पुत्र को भ्राताओं के अनुकरण अपनी लोक-यात्रा को जीवन आदर्श बनाने में प्रेरणा का कर्तव्यपालन महत्वपूर्ण उपदेश है, जिससे हर व्यक्ति परिवार का कल्याण ही कल्याण है।

इस आदर्श का भारतवासी यदि हृदय से आचरण करें तो घर-घर गाँव-गाँव आज मातृ-पितृ-भक्ति की वृद्धि होती, उसकी समाज के लिए मंगलकारिणी आस्था ही नहीं, सबल भावना कर्तव्यपरायणता की दिशा सुख होती। आज इसका ह्रास ही दिखाई पड़ रहा है, जिसके कारण हम सभी भारतीय अनेक असहनीय दुःखों को भोग रहे हैं—शास्त्र का निर्देश भी है कि :

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानान्तु विमानता।
त्रीणि तत्र भविष्यन्ति दुर्भिक्षं मरणं भयम् ॥

अर्थात् जिस देश, ग्राम, नगर, गृह में दुर्जनों का मान-सम्मान हो तथा सज्जनों का निरादर हो उस देश, ग्राम, नगर, गृह सर्वत्र दुर्भिक्ष काल का आगमन होता है। मरण (नाश) भय आदि विपत्तियाँ सब प्रकार की हानि होती है। ये तीन बातें दुर्भिक्ष, मरण, भय अपूज्यों के सम्मान और पूज्यों के निरादर का फल है। वेद में वर्णित समुपदेश मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव, अतिथिदेवो भव आदि मान मात्र के लिए अत्यन्त उपयोगी एवं अनिवार्य है, अपरिहार्य है इसका परिपालन हर धर्म के लोगों को करना चाहिए। इसमें किसी प्रकार का भेदभाव नहीं है। जिस भारतवर्ष में माता, पिता, आचार्य-गुरु व अतिथि को देवता माना

जाता था उनका आदर-सम्मान था, आज सब कुछ विपरीत हो गया है। इन उत्तम सभी वेदवचनों का विधिवत् परिपालन भगवान् राम ने करके समाज को सही प्रशस्त कल्याणप्रद मार्ग बताया है।

भ्रातृप्रेम :

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का भ्रातृप्रेम भी हर मनुष्य के लिए अनुकरणीय है। भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न के प्रति जो एक आदर्श स्नेह एवं अपने से अधिक उन्हें सुखी देखना, प्रसन्न रखना, सन्तुष्ट रखना सही मार्ग का निर्देश भी कितने सरल दयाभावपूर्ण प्यार से उपकृत करना ये सभी पूर्ण वात्सल्यभाव का सही परिपाक है। आज हर परिवार में बड़ा भाई छोटे भाई के प्रति राम की तरह प्रेम भाव प्रदर्शन करे तो छोटे भाई की भरत-लक्ष्मण-शत्रुघ्न की तरह अवश्य श्रद्धा-भक्ति से बड़े के प्रति सेवा-भाव का, उनके आज्ञापालन का हृदय से ध्यान रखेंगे जिससे सभी माता-पिता आदि भ्रातृप्रेम देखकर कितना सुख का अनुभव करेंगे। अपना सब कुछ बच्चों के लिए समर्पण कर परमानन्द का लाभ प्राप्त करेंगे।

प्रतिज्ञा की दृढ़ता :

प्रतिज्ञा को पूर्ण करना मनुष्य का परमकर्तव्य है। इसी लिए भगवान् राम का यह वचन कितना उपयोगी है, सार्थक है कि 'रामो द्विर्नाभिभाषते' अर्थात् भगवान् श्रीराम किसी बात को कह कर पुनः उसे दुबारा—दूसरा बार नहीं कहते। इसका तात्पर्य यह है कि जो कहा जाय उसका पूर्ण रूप में पालन कर सत्य किया जाय तथा जो न किया जा सके उसे कहा ही न जाय। भगवान् श्रीराम ने असुर विहीन करने की प्रतिज्ञा की थी उसे ऐसे ढंग से पूरा किया जो राम की शरण में आ गये तथा उनका आधिपत्य न्यायतः मान लिये वे ही बचे। या कुछ आततायी होते हुए पुनः गलती करने का साहस ही नहीं किये। बालिवध, शरणागत विभीषण की रक्षा, सुग्रीव आदि की रक्षा कर अपना दिया वचन पूरा किया श्रीरामं ने।

इससे यही शिक्षा मिलती है कि हर मनुष्य सोच-विचार कर वही प्रतिज्ञा करे, किसी को वचन दे जिसको प्राणपण से पूरा कर

सके अर्थात् कहना कम करना ज्यादा का ध्यान रखे। यही मानवता की भीख है, यही सीख है। मानव जीवन को सभी प्रकार की घटनाएँ कर्म के अनुसार ही घटित होती हैं। यदि मनुष्य उन कर्मों को अब से समझने का प्रयास करे तथा यथाशक्य सत्कर्मों की ओर ध्यान देकर मनसा, वाचा, कर्मणा परिपालन करे तो उसे महामानव बनने के सभी स्वप्न साकार प्राप्त होने में सफलता मिलनी निश्चित है। वह मानवता का सही आदर्श प्रस्तुत कर सकता है इसमें संशय नहीं है।

जीव मनुष्य योनि में आकर जितने कार्य करता है उनका जो फल होता है वही कर्म कहलाता है। कर्म भी तीन प्रकार के होते हैं। जैसे— १—सञ्चित, २—प्रारब्ध, ३—क्रियमाण। मानव योनि में कार्य के फल का जो कर्म बनता है वह सभी एकत्र होता रहता है और उसी का नाम सञ्चित कर्म है। वह प्राणी अनादि काल से जनम-मरण के चक्र में भ्रमण कर रहा है। उसका जन्म मनुष्य योनि में कितने बार हो चुका है और वहाँ न मालूम कितने ही कार्य उसने किया है वे सभी उस जीव के सञ्चित कर्म बनकर जीव के साथ-साथ लगे हुए हैं। इन सञ्चित कर्मों की गणना करने में समर्थ ईश्वर के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं हो सकता।

२—प्रारब्ध–सभी कर्मों का फल जीव अनन्त जन्मों में भोगकर उससे अलग हो जाता है। उस समय किसी योनि में जीव जाता है तो कर्म भी जाते हैं अर्थात् संचित कर्म से कुछ कर्म प्रारब्ध कर्म भी बनते हैं और वे उस जीव के साथ रहते हैं जब वह किसी भी योनि में जाता है तब वे ही प्रारब्ध कर्म उसके साथ जाते हैं और उन्हें वह भोगता रहता है। उनके समाप्त होने पर उस योनि से वे दूर हो जाते हैं।

३. क्रियमाण कर्म

मनुष्य योनि में आकर जीव से भविष्य में जो कार्य किये जायेंगे और उनके द्वारा ही जो कर्म बनेंगे वे ही क्रियमाण कर्म कहलाते हैं। यदि जीव से अच्छे ही अच्छे कार्य होते रहे तो उसके क्रियमाण कर्म अच्छे ही

अच्छे होंगे । यदि बुरे कार्य होंगे ही नहीं तो उसके कर्म बनेंगे ही नहीं । इस प्रकार यदि कर्म बन गये तो वे ही अगले जन्म के लिए संचित कर्म हो जायेंगे । इससे यह प्रश्न स्वभावतः उठता है कि मनुष्य योनि में आकर भी जीव से कोई भी कर्म न हो यह क्या सम्भव है ? इसका उत्तर स्पष्ट है— ऐसा कभी हो ही नहीं सकता । देह धारण करने पर जीव से बराबर कार्य होते ही रहते हैं । एक क्षण के लिए भी कार्य होना बन्द नहीं होता । ऐसी दशा में यह भी स्वाभाविक है कि जितने भी कार्य होते हैं वे सभी के सभी बन्धन होते रहेंगे तो जन्म भी होता रहेगा । भोगने के लिए मुक्ति पाना असम्भव ही होगा । इसी लिए गीताचार्य जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्ण ने स्पष्ट शब्दों में उपदेश दिया है कि जीव जो कुछ भी अपनी कामना से करता है मुझे अर्पण की बुद्धि से नहीं करता तो शुभ-अशुभ जो भी कुछ करेगा वह बन्धनकारक होगा ही । यदि वे कर्म मेरे लिए अर्पण बुद्धि से किये, मेरे निमित्त निष्काम भाव से करे तो उनका कर्मबन्धनकारक नहीं होता, अर्थात् उन कार्यों के कर्म उस जीव के नहीं होते वे मेरे (ईश्वर के लिए हो होते हैं) इससे उन कर्मों से उनके भोग से जन्म-मरण रूप भवचक्र से छुटकारा पाने के लिए ऐसा उपाय करना चाहिए कि जीव के जो कर्म हैं वे सब समाप्त हो जायँ, यदि जीव ऐसा कर्म करे कि उन कार्यों से कर्म बनें ही नहीं तो भविष्य में होने वाले जितने कर्म हैं वे भी नहीं बनेंगे अर्थात् क्रियमाण कर्म तो समाप्त हो जायेंगे, परन्तु प्रारब्ध कर्म तो भोगने से ही समाप्त होंगे और इनकी समाप्ति किसी भी प्रकार से नहीं हो सकती । अतः उन्हें भोग कर ही समाप्त करना होगा, बच गया संचित कर्म, यदि वे भी समाप्त हो जायँ तो फिर जीव को बन्धन से मुक्ति मिलने में क्या देर है ? इसलिए आगे कर्म के बन्धन न बँधे अतः ऐसा बाँध बाँधा जाय जिस बाँध के द्वारा और नष्ट कर्म उन पुराने कर्मों के साथ न मिल सकें तभी ऐसा सम्भव हो सकता है । इसलिए वह बाँध इतना दृढ़ होना चाहिए जो सभी प्रकार की विघ्न-बाधाओं को पूर्ण रूप से डट कर मुकाबिला कर सके । बाँध मजबूत बाँधने के लिए मजबूत नींव की आवश्यकता होती है, क्योंकि नींव पर ही सब कुछ निर्भर होता है ।

यदि कहीं नींव कमजोर हुई तो विरोधी तत्त्वों की टक्कर से वह बाँध नहीं ठहर सकता। इसी लिए सबसे पहले दृढ़ नींव का प्रबन्ध आवश्यक है। उस बाँध की नींव की शिला तो स्वरूपानुसन्धान की होनी चाहिए। इसका भाव यह है कि मनुष्य को अपने स्वरूप का ज्ञान होना चाहिए। तभी तो महामानव बन पायेगा, मानवता की रक्षा करने में, कराने में पूर्ण समर्थ हो सकेगा। वह विचार करे कि मैं कौन हूँ और किससे मेरा क्या सम्बन्ध है ? इसकी विवेचना करने के लिए सभी को यह समझना जरूरी है कि मैं और देह दोनों एक ही तत्त्व हैं या भिन्न-भिन्न तत्त्व।

वोल-चाल की भाषा में हम लोगों का यही व्यवहार दिखायी-सुनाई पड़ता है कि मेरा हाथ, मेरा पाँव, मेरा मन, मेरी बुद्धि आदि। यह भी कहा जाता है कि मेरी आँख में पीड़ा है मेरे पैर में फोड़ा हो गया है। मेरी बुद्धि काम नहीं करती, मेरा मन विचलित रहता है। यह कभी नहीं व्यवहार में सुनाई देता कि मैं हाथ हूँ, पाँव हूँ, आँख हूँ, शरीर हूँ, मन हूँ, बुद्धि हूँ। इन सामान्य व्यवहारों से भी सिद्ध हो जाता है कि शरीर एवं सभी अंग व इन्द्रियाँ आदि भिन्न-भिन्न वस्तुएँ हैं और मैं, हम आदि कहने वाला एक भिन्न है। उसे स्पष्टतया बताने के लिए यह कहा जाना उचित है कि मृत्यु के वाद जीव देह से पृथक् हो जाता है। देह अलग पड़ी रह जाती है। परन्तु मैं कहने वाला जीव उसमें नहीं रहता। इसी से स्पष्ट है कि मैं कहने वाला जीव, देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि सभी से अलग तत्त्व हैं। अजर-अमर हैं। देह में मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ सभी जड़ वस्तुएँ हैं। इनमें स्वयं कुछ भी कोई भी चेतनता नहीं है। चैतन्य (जीव) का प्रकाश पड़ने पर ही ये काम करते हैं, क्रियाशील होते हैं, न कि स्वतः चैतन्य के प्रकाश के विना इनमें कोई हलचल न हो सकती। किन्तु जीव स्वयं चैतन्य है, उसका अपना स्वयं का प्रकाश है। जीव को परमात्मा का ही अंश माना गया है इसी लिए ईश्वर के अवतार भगवान् श्रीराम के चरित्र तथा श्रीकृष्ण के वचन का श्रद्धापूर्वक पालन करना हर मनुष्य का परमकर्त्तव्य है। उसी से ही मानवता का अभ्युदय व विकास सम्भव है। यही व्रत धारण करना मनुष्य के जीवन का सही लक्ष्य है, सही स्वरूप है, सही धर्म है।

किन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि जीव परमात्मा से निकला हुआ कोई अलग है। जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश एक कमरे के भीतर प्रविष्ट होने पर उस कमरे में प्रकाश हो जाता है और उस कमरे को दीवार यदि हटा दी जाय तो वह प्रकाश बाहर के प्रकाश के साथ मिल जाता है, वह अलग नहीं रहता तथा उस कमरे के भीतर के प्रकाश को यदि चारों तरफ से घेर कर सूर्य के प्रकाश से अलग करना चाहें तो नहीं कर सकते। परमात्मा सब प्रकार से परिपूर्ण है। यदि सूर्य में से पूर्ण निकाला जाय तो भी या थोड़ा निकाला जाय तो भी पूर्ण ही रहता है, किसी प्रकार कम नहीं होता, उसमें कुछ भी अन्तर नहीं होता। शास्त्रों में ऐसा वचन भी स्पष्ट कहा गया है :

पूर्णमिदं पूर्णमदः पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।

अर्थात्—परमात्मा के स्वयं पूर्ण होने के कारण जीवात्मा परमात्मा का अंश है। अंश होने के कारण जीव भी पूर्ण है और परमात्मा से किसी भी तरह अलग नहीं है। परन्तु जीव मायावश है, उसके साथ माया लगी हुई है। साथ ही पूर्वजन्मों के कर्म जीव के साथ बँधे हुये हैं। मायाधीन होने के कारण ही वह परमात्मा से अलग रूप में भासित हो रहा है। वस्तुतः ईश्वर का अंश होने के नाते चैतन्य है, स्वयंप्रकाशमान एवं विशुद्ध है। इसे ऐसे मानना चाहिये कि शरीर, इन्द्रियाँ, मन आदि जो हैं वे जीव से भिन्न हैं। इस तथ्य को हृदय में दृढ़ता से स्वीकार कर लेना चाहिये जमा लेना चाहिये।

जैसे चश्मा को देखकर मन में तत्काल यह बात ध्यान में आ जाती है कि यह चश्मा है, यदि उसे कोई पेन या दावात कुछ कहे या माने तो उसे कदापि नहीं माना जाता, बल्कि बराबर निश्चित रूप में यही कहते हैं कि यह चश्मा ही है न कि लेखनी या दावात आदि अन्य कुछ भी। ऐसा क्यों होता है तो उसका उत्तर यही है कि चश्मे व लेखनी आदि के भेद को अच्छी प्रकार से समझते हैं। उसी प्रकार यह भी अच्छी तरह से जान लेना आवश्यक है कि देह, इन्द्रिय आदि

से जीव अलग है। दोनों तत्त्व देह एवं जीव एक कभी नहीं हो सकते। इसी बात को दृढ़ता से मन में अवश्य रख लेना चाहिये। मेरा (जीव का) स्वरूप देह से सर्वथा भिन्न है।

शरीर को भोग का आयतन-आश्रम माना गया है, उसी शरीर, इन्द्रियों आदि के द्वारा जीव अपने कर्म के फल को सुख-दुःख रूप भोगता है। यहाँ यह भी विचार करना जरूरी है कि सांसारिक जितने सुख एवं प्रलोभन हैं सभी नाशवान् हैं। यदि यह सत्य है ही तो उससे अधिक सुख देने वाली वस्तु क्या है ? जो अधिक सुख-शान्ति-प्रद भी हो और नित्य शाश्वत एवं स्थायी हो ? इसका यथार्थ एवं कल्याणप्रद उत्तर यही है कि परमात्मा नित्य शाश्वत, आनन्दघन, स्वयंप्रकाश व चैतन्य सबका कर्ता-भर्ता व संहर्ता भी है। उसी के द्वारा सम्पूर्ण लोगों की सृष्टि होती है। वह पालनकर्ता व संहारकर्ता भी है। यह सब कुछ जानकर भी अनजान बने हुये हैं।

इसका कारण यह है कि अज्ञान रूप अन्धकार को परदा के रूप में ओढ़ लिया गया। जब तक तम का परदा नहीं हट जाता तब तक उक्त ईश्वरीय गुणों का, उसके स्वरूप का अनुभव नहीं होता है। वह परदा भी तब हटता है जब ईश्वर की वाणी रूप वेद-पुराण धर्मशास्त्र आदि बातें हृदय में पूर्ण रूप में जम जायें। यह अन्धकार रूप चक्र जीव के पीछे लगा हुआ है, जब तक हट नहीं जाता, तब तक परमात्मा की बातों में श्रद्धा व भक्ति नहीं होती तब तक परमात्मा में लौ नहीं लगती और जब तक लौ नहीं लगती तब तक तम-अन्धकार हटता भी नहीं। फिर भी इससे कभी निराश नहीं होना चाहिये। प्रयत्न करने से भगवान् में लौ भी होगी ही तथा परमात्मा का दर्शन भी, उसकी प्राप्ति भी, ऐसा शास्त्रों में अनन्त वचन एवं प्रमाण उपलब्ध हैं।

इसलिए भगवद्गुणों को सुनना, विश्वास करना, आदि दृढ़ अभ्यास से संसारी विषयों से, वैराग्य से सभी कुछ सम्भव है। पर इसका यह भी अर्थ नहीं है आज के युग में कि सभी गृहकार्य एवं परिवार का त्याग कर अपने उद्धार के लिये एकान्त में बैठ जाय। यहाँ इस विषय पर ध्यान देना है कि परिवार को भगवान् का भक्त

एवं अंश मानकर उनका पालन-पोषण भी भागवत-भावना से करना धर्म है, ईश्वर की ही पूजा व आराधना है न कि लौकिक सम्बन्धी मानकर। लौकिक सम्बन्ध से ही बन्धन है। भगवान् को प्राप्त करने के लिये शास्त्रों में अनेक सरल उपाय बताये गये हैं जैसे किसी विशेष अपेक्षित स्थान पर पहुँचने के लिये अनेक मार्ग होते हैं, कोई किसी रास्ते से कोई किसी रास्ते से यात्रा करता है। परन्तु अन्त में भिन्न-भिन्न रास्ते से आने पर भी सभी लोग अपने निर्दिष्ट स्थान पर ही पहुँच जाते हैं। उसी तरह शास्त्रों में जितने भी मार्ग बताये गये हैं उन सभी मार्गों से ईश्वर की प्राप्ति निश्चित है। अपनी-अपनी रुचि एवं शक्ति श्रद्धा के अनुरूप जिनको जो मार्ग सुगम एवं अनुकूल मालूम पड़े वैसा मार्ग अपना लेंवे। परन्तु आज जो परिस्थिति है उसको जो सबसे सुगम (सरल) रास्ता है वह यही है कि जैसा भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता के १८ वें अध्याय के ६५ वें श्लोक में कहा है कि—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥

अर्थात्—केवल मुझ सच्चिदानन्दघन परमात्मा में अनन्य प्रेम से नित्य निरन्तर अचल मनवाला हो जा और मुझ परमेश्वर को ही अतिशय श्रद्धा-भक्ति सहित निष्काम भाव (कामनारहित होकर) से नाम गुण व प्रभाव के श्रवण-कीर्तन-मनन पठन-पाठन द्वारा (प्राणिमात्र को भगवान् का भक्त समझकर उसमें भी प्रेम से दया-उपकार भाव) निरन्तर भजने वाला हो तथा मन, वाणी एवं शरीर से सर्वस्व अर्पण कर अतिशय श्रद्धा, भक्ति एवं प्रेम से विह्वलतापूर्वक मेरा पूजन करने वाला हो। चूँकि सभी जीव मेरे ही अंश हैं, प्रकाश हैं जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। उनमें पूर्ण प्रेम, श्रद्धा-भाव रखकर ईर्ष्या-द्वेष आदि भावना का त्याग-कर उन्हें भी प्रसन्न रखना मेरा ही पूजन है। और मुझ सर्वशक्तिमान् विभूति, बल, ऐश्वर्य, माधुर्य, गम्भीरता, उदारता, वात्सल्य और सहृदयता आदि गुणों से सम्पन्न सबके आश्रयरूप परमात्मा को विनयभावपूर्वक भक्तिसहित दण्डवत्
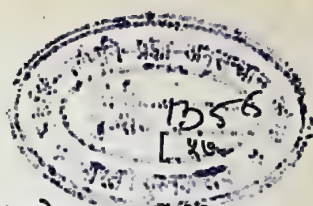
प्रणाम कर ऐसा करने से तू मेरे को ही प्राप्त होगा। यह मैं तेरे लिए सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ क्योंकि तू मेरा अत्यन्त प्रिय अपना ही सखा है। ऐसा निरन्तर करते रहने से मन उसी में रम जायेगा। इन उक्त ईश्वरीय गुणों को मनुष्य मात्र को अपने में उतारने का प्रयास करना चाहिए तथा ईश्वर अंश जीवों के प्रति भी उक्त भावना से देखना व उनमें उक्त सभी सद्‌गुणों को पैदा करने का भी प्रयास करना चाहिए, जिससे सभी मनुष्य परस्पर में एक अतिशय सौहार्द भाव प्रेम मैत्री भावना से पूर्ण होकर संकुचित स्वार्थ एवं भावना का त्याग कर मानवता महाव्रत का सर्वत्र प्रचार-प्रसार के साथ-साथ उसका आचरण करते हुए अन्य लोगों को भी आचरण करने के लिए उचित वातावरण पैदाकर सहयोग करने में कभी पीछे नहीं हटना चाहिए।

उक्त जीव ईश्वर के सम्बन्ध एवं स्वरूप एवं कर्तव्य के ज्ञान से मानवता की प्रतिष्ठा में पूर्ण बल मिलेगा।

मानवता महाव्रत में धर्म का स्वरूप

धर्म किसे कहते हैं यह प्रश्न स्वाभाविक है। धर्म का स्वरूप एवं लक्षण का अनेक आचार्यों ने भिन्न-भिन्न रूप में वर्णन किया है। धर्म का सामान्य स्वरूप ही यहाँ संक्षेप में बताना आवश्यक है। धर्म का लक्षण भी गहन है, जो धारण करने योग्य हो वह धर्म है, जो प्रजा को धारण करे वही धर्म है, जिससे लौकिक-पारलौकिक दोनों इष्ट सिद्ध हों वही धर्म है। जो सत्कर्म में प्रेरित करे वही धर्म है। इस लोक और परलोक में कल्याण करने वाली महापुरुषों द्वारा दी गई शिक्षा भी धर्म है। वेदप्रतिपादित—वेदानुकूल आचरण भी धर्म है। जो महापुरुष कल्याणकारी कर्म, आचरण एवं व्यवहार करते हैं वही धर्म है। तब प्रश्न उठता है कि महापुरुष कौन है? इसका समाधान है कि परमात्मा को यथार्थ रूप में जाननेवाला तत्त्ववेत्तामनुष्य तथा परमात्मा द्वारा रची गयी सृष्टि में सभी जीव-जन्तु के प्रति उपकारी, दयावान् प्रसन्न रखने वाला है।

हिन्दुस्तान का धर्म व स्वरूप

हिन्दुस्तान का धर्म इतना उदार व व्यापक तथा प्राणिमात्र का कल्याणकारक है कि हर मनुष्य, जाति, वर्ग, सम्प्रदाय से ऊपर उठ कर सभी का शुभचिन्तक व उपकारक होने में ही अपना स्वरूप व कर्तव्य समझता है एवं अपना सौभाग्य समझता है। उसका भाव बड़ा ऊंचा होता है वह सभी नारी वर्ग को माता, बहन, कन्या समझता है। दूसरे के धन को मिट्टी के ढेले के समान समझता है। हर प्राणी को अपने समान मानता है यही उसका सही मनुष्यत्व है। यही सच्ची मानवता है।

इस प्रकार विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह धर्म किसी जाति, वर्ग, सम्प्रदाय के संकुचित दायरे में नहीं आता है। यह तो एक ऐसा धर्म है कि इससे पूरा का पूरा वातावरण प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता, क्योंकि इसकी जड़ (बीज) सत्य है, अहिंसा है, पवित्रता है, दया है। ऐसी दशा में प्राणि क्या जड़ भी वस्तु चेतन हो सकता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में ऐसा उपदेश समभाव रूप में रह कर हर विपदा से मुक्त रहने के लिए जो दिया है वह बड़ा ही हृदयग्राह्य है, उपादेय है। जैसा कि गीता के १२वें अध्याय के १३-१४ वें श्लोक में व्यक्त है :

> अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
> निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी॥
> सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
> मय्यर्पितः मनोबुद्धिर्योमद्भक्तः स मे प्रियः॥

जो व्यक्ति सभी प्राणियों में द्वेष-भाव से रहित एवं स्वार्थरहित सबका प्रेमी और हेतुरहित दयालु है तथा ममता से रहित एवं अहंकार से रहित सुख तथा दुःख की प्राप्ति में अविचल भाव से सम एवं क्षमावान् है अर्थात् अपराध करने वाले को भी अभयदान देने वाला है।

जो ध्यान योग में युक्त हुआ निरन्तर लाभ-हानि दोनों स्थिति में सन्तुष्ट है। दुःख में घबड़ाता नहीं, सुख में प्रसन्नता किसी प्रकार का अपने में उत्तमता का अनुभव न कर मानसिक सन्तुलन बनाये रहता है तथा मन और इन्द्रियों सहित शरीर को वश में किये हुए मेरे में (भगवान् में अल्ला, खुदा जो भी जिसके इष्टदेव रूप में आराध्य हैं) निश्चय वाला है, वह मेरे में अर्पण किये हुए मन-बुद्धि वाला मेरा भक्त, मुझको प्रिय है।

यह गीतावचन समान रूप में हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई हर मजहब वालों के लिए उपयुक्त है और गीता का वचन भी समान रूप में हिन्दू धर्म के लिए ही नहीं, पूरी मानवता के लिए अत्यन्त लाभप्रद होने से उपयोगी है, जैसा कि गीता के १४। २४-२५ श्लोकों में कहा गया है—

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः॥
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते॥

इन श्लोकों का भाव यह है कि जो मनुष्य निरन्तर आत्मभाव में स्थित हुआ दुःख-सुख दोनों को समान समझने वाला है, तथा मिट्टी-पत्थर में व सुवर्ण में समान भाव वाला (समान ही समझने वाला) तथा धैर्य धारण करने वाला है तथा जो प्रिय-अप्रिय को (इष्टवस्तु व जन को अप्रिय वस्तु व जन को) एक रूप में बराबर समझने वाला है और अपनी निन्दा में दुःखी नहीं होता, स्तुति में प्रसन्न नहीं होता, समान भाव रखने वाला है। और किसी के द्वारा सम्मान प्राप्त करने पर न किसी के द्वारा अपमान प्राप्त करने पर भी समभाव में बना रहता है तथा मित्र व शत्रु के पक्ष में भी समभाव है, जो भी सत्कर्म करता है, जो भी कार्य आरम्भ करता है, उसमें अपने कर्त्तापन का अभिमान नहीं रहता, न स्वयं उसका वर्णन करता या दूसरे द्वारा वर्णन एवं प्रशंसा होने पर उससे डरता है, प्रसन्न नहीं होता ऐसा पुरुष अभिमानशून्य, गुणातीत कहा जाता है। ये सभी

महापुरुषों के लक्षण हैं। किसी धर्म के हों, किसी भी जाति, वर्ग, सम्प्रदाय के हों, इनमें किसी एक वर्ग, जाति, सम्प्रदाय-विशेष का पैतृक अधिकार नहीं है कि इसे मैं ही मानता हूँ व पालन करता हूँ या करूंगा, क्योंकि ये सभी मानवता के खजाना हैं, जिसमें सभी का समान एवं पूर्णतः जन्मसिद्ध अधिकार है। भले ही हिन्दू हों, मुसलमान हों, सिख हों, ईसाई हों, कोई भी वर्ग हो, इसमें भेदभाव का गन्धमात्र भी जब नहीं है तो गीता के इस वचन में हिन्दू के अतिरिक्त सभी इसके पूर्ण उपासक हैं, धारक हैं। इससे जीवन को सुखमय व शान्तिमय बनाने में भी आगे हों, बढ़कर अपने आपको इन्हें प्राप्त कर आचरण करने में तथा दूसरे को भी आचरण व व्यवहार कराने में प्रवृत्त कर महामानव बन सकता है।

इन्हीं गुणों को धारण कर ही हर मजहब (धर्म) में अनेक सन्त महापुरुष हो चुके हैं एवं आज भी अवश्य कहीं न कहीं हैं ही। इसी प्रकार से कुरान, बाइबिल आदि सद्ग्रन्थों में भी मानवीय उत्तम गुणों का वर्णन है, उन्हें भी धर्म कहते हैं। और उनका आदर व पालन हर हिन्दू वर्ग के लिए भी उपयोगी है, कल्याणकारी है। हमारे देश में प्राचीन समय में ऋषि मुनि आचार्य जो भी महापुरुष हुए हैं जिन्होंने प्राणिमात्र के कल्याणार्थ ही उन युगों की भावनाओं तथा आस्थाओं का इन्द्रिय आत्मा के कल्याण के लिए औषध शास्त्र रूप में शास्त्र का निर्माण न कर धर्मसूत्र धर्मशास्त्र नाम रूपों में ही बनाया। वह युग ऐसा था कि उन दिनों मनुष्य धर्म के विरुद्ध कोई बात सुनकर काँप उठता था, आचरण करना तो दूर रहा। मनुष्य इसीलिए बराबर ऋषि मुनियों आचार्यों गुरुओं के पास जा-जाकर विधि-निषेध वचन का उपदेश ग्रहण करना अपना-अपना कर्तव्य व धर्म मानते थे। इसी कारण ही वेदों का जो भी उपदेश लोक-कल्याणमय था उसे ही श्रुति-स्मृति, पुराण आदि रूप में आचार्यों ने साक्षात् धर्म शब्द से बाँधकर प्रणीत कर सभी के सामने प्रस्तुत किया।

वस्तुतः सभी शास्त्रों का जो भी विधि-निषेध वचन है वह भौतिक आध्यात्मिक सुख शान्ति प्रगति के के लिए ही है। संसार
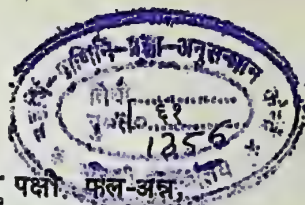
विषम है। सभी प्रकार की वस्तुएँ सृष्टि में हैं। पशु पक्षी फल-अन्न, शाक-सब्जी औषध आदि सभी उपयोगी वस्तुएँ भिन्न-भिन्न ही प्रकृति देवी की दया से ईश्वर की इच्छा एवं संकल्प से प्रकट है। तो मनुष्य शरीरधारी भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि रूप में, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास आश्रम रूपमें मानवीय मर्यादाओं का संरक्षण, संवर्धन परिपालन सभी प्राणी के कल्याण में ही प्रयुक्त हुए हैं। वे सभी वर्णाश्रम भेदभाव ग्रसित होकर मानव को दानव बनाने में, प्राणि को कष्ट देने में, दलन करने में, छोटा मानने में, नहीं लागू होते हैं। क्योंकि सभी प्राणी ईश्वर के (खुदा के) अंश हैं, बन्दे हैं, तो छोटापन या बड़प्पन का प्रश्न ही नहीं उठता।

जैसे पृथ्वी में अनेक तत्त्व एक ही जगह पाये जाते हैं। पहाड़ों में एक ही जगह अनेक रत्न, मणि एवं समुद्रों में भी अनन्त रत्न पाये जाते हैं एक ही जगह। यह सब प्रकृति का वैभव है जो सनातन है, प्रवाह नित्यतावश उसी प्रकार मानव प्राणी भी अनेक जाति-वर्ग सम्प्रदाय रूप में यद्यपि भिन्न प्रतीत होता है वह भी कर्म क्षेत्र के आधार पर ही जिनके जो भी पूर्वज थे उनको सन्तति भी वही मानी गयी। यह जन्म संस्कारवश भी है, व कर्मवश भी मिलता है, किन्तु मनुष्यत्व एक है, मानवता एक है सभी में। कर्मफल तो भोग्य है, भोगना ही पड़ता है। अपनी जिसको जैसी रुचि वैसा कर्म करता है। रुचि के अनुसार वस्त्र धारण करता है, रुचि के अनुसार भोजन, जलपान भी करता है, एकता इसमें कहाँ है ? सर्वत्र भेद तो स्पष्ट है ही, परन्तु जीवन का लक्ष्य सभी का एक है सुख शान्ति, प्रेम भाईचारा का व्यवहार, परस्पर में सुखदुःख में भागीदार बनना, सहायक होना, भूखे-दुःखे का उपकार करना, यह किसके नाम से रजिस्ट्री है ? किसी के नाम कहाँ वैदिक, पौराणिक, व धर्मशास्त्रीय विधान है कि सत्य अमुक बोले अमुक न बोले, दया-दान, उपकार, प्रेम अमुक वर्ग जाति सम्प्रदायवाले करें, अमुक न करें। ऐसा तो कहीं भी नहीं लिखा मिलता है। इसी से ही सुस्पष्ट है कि जो कुछ भी कभी शास्त्रविरुद्ध मिटाया जाता है वह मिटा नहीं किन्तु और बढ़ता ही है, जैसे पहले भारत में हिन्दू वर्ग में चार वर्ण थे,

आज अनन्त हो गये हैं, क्योंकि वर्ण धर्म मिटाने की प्रक्रिया बड़े जोरों पर सर्वत्र चल पड़ी है। कुछ वर्ग ने भी मत-संचय हेतु मानो इसे महामन्त्र मान लिया है।

वास्तविकता कहाँ कैसी है, इस पर ध्यान दिया जाय कि उपदेश की जगह आचरण कर सिद्ध किया जाय। जिससे समाज के हर व्यक्ति का कल्याण हो, जो प्रचार प्रसार शक्ति सनातन वस्तु का झूठा व कपोल कल्पित या किसी वर्णसम्प्रदाय द्वारा पैदा किया गया माना जा रहा है, वह वैसा नहीं है। वह तो ईश्वरीय विधान के अन्तर्गत प्रकृति देवी के भण्डार का एक-एक बीज है जो अंकुरित हुआ है वह होगा। प्रकृति से कलह करना मनुष्य के लिए अच्छा नहीं है। वही सभी शक्ति भाषण प्रवचन भी मानवीय गुणों के वर्णन एवं प्रचार-प्रसार करने तथा स्वयं आचरण करने में लगाई जाय तो वर्ग-जाति-सम्प्रदाय का प्रचार कर या निन्दा स्तुति कर मिटाना आवश्यक नहीं, वह तो समय की ऐसी माँग है. ऐसी स्थिति है कि स्वयं मिटती ही जा रही है, जो स्वयं मिट रही है उसके पीछे-पीछे क्यों दौड़ें ?

मानव कल्याण के लिए जो वस्तु रक्षायोग्य है उसकी रक्षा होनी चाहिए। वह है सच्चाई, प्रेम, प्राणियों में दया, गरीब का उपकार, अहिंसा, आदि। समय हर प्राणी के पास बहुत थोड़ा है और कार्य-क्षेत्र ज्यादा है तो बुद्धिमानी इसी में है कि चाहे शासक हों, शास्य हों, राजा-प्रजा सभी लोग मानवता को बनावें, उसमें हिन्दू, मुसल-मान, सिख ईसाई सभी हिस्सेदार हैं। सभी का हित है। सिख गुरुओं ने सभी मानवीय गुणों का, ईश्वरीय आज्ञाओं का गुरु ग्रन्थ साहब में संग्रह किया है जो एक-एक पंक्ति मन्त्र रूप अमृतवचन हैं। उसी में सबका हित है।

हम तो यही निवेदन करते हैं कि जो अपने को हिन्दू मानता है वह सभी हिन्दू ही है, चाहे जो भी मजहब वाले हों। जो वैसा नहीं मानते वे भी मानव तो हैं ही। मानवता में ही हिन्दुत्व भी है, मुसलिम-सिख आदि के धर्म भी हैं। वस्तुतः हिन्दू शब्द का अर्थ है

हिन्दुस्तान (आर्यावर्त) में जन्म होना, और किसी हिन्दुस्तानी आचार्य द्वारा चलाये हुए मत को मानना। मत भी सनातन, आर्य, सिख, बौद्ध, जैन, ब्रह्म आदि भिन्न-भिन्न मत को मानने वाले भी चाहे ग्राम नगरवासी हों या जंगलवासी हों यदि वे अपने को हिन्दू मानते हैं, तो हिन्दू हैं ही इसमें कुछ भी न विरोध, न हानि ही है। इस पर यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि सभी हिन्दुओं द्वारा चलाये मत हिन्दू धर्म माने जा सकते हैं ? समाधान यह है कि अवश्य. यदि कोई पूछे कि सभी मतों में सबसे प्रधान और कल्याणकारक मत किसको माना जाय ? तो उत्तर यही है कि अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरभक्ति, ज्ञान, वैराग्य, मन का विग्रह, इन्द्रियदमन, तितिक्षा, श्रद्धा, क्षमा, वीरता, दया, दान, प्रेम-तेज, सरलता, प्रेम, स्वार्थत्याग, अमानित्व, दम्भराहित्य, पिशुनता का त्याग, निष्कपटता, विनय, धृति, सेवा, सत्संग, जप, ध्यान, निर्बैरता, निर्भयता, समता, निरहंकारता, मैत्री, कर्तव्यपरायणता और शान्ति इन अनन्त गुणों में से जिस मत में जितने अधिक गुण हों वही मत सबसे प्रधान और मंगलकारक है। उसे मानना चाहिए यही उचित भी है।

१. अहिंसा—मन, वाणी, व शरीर से किसी प्रकार किसी को कभी भी कष्ट न देना।

२. सत्य—अन्तःकरण और इन्द्रियों द्वारा जैसा निश्चय किया गया (व सुना देखा गया, अनुभव किया गया) हो वैसा का वैसा ही यथार्थ रूप में प्रिय शब्दों में व्यक्त करना।

३. अस्तेय—किसी प्रकार भी किसी की चोरी न करना।

४. ब्रह्मचर्य—आठ प्रकार के दर्शन, स्पर्श, गुप्त भाषण आदि का मन, वचन, शरीर सभी तरह से त्याग करना।

५. अपरिग्रह—ममत्व बुद्धि से (स्वार्थ भावना से) संग्रह न करना।

६. शौच—बाहर व भीतर (मन, वचन शरीर) सभी तरह पवित्र रहना।

७. सन्तोष—तृष्णा का सर्वथा अभाव।

८. तप—स्वधर्मपालन के लिए कष्ट सहना।

९. स्वाध्याय—पारमार्थिक (भौतिक व आध्यात्मिक सच्ची शान्तिप्रद) ग्रन्थों का अध्ययन और भगवान् के नाम व गुणों का कीर्तन-स्मरण करना।

१०. ईश्वरभक्ति—भगवान् में व भगवान् के अंश जीवों में भी स्वार्थभावरहित प्रेम भाव व श्रद्धा को अभिवृद्धि करना। उस पर निरन्तर चलने का अभ्यास स्वयं करना तथा दूसरे को भो कराना, जिससे सभी का उपकार हो।

११. ज्ञान—सत् और असत् पदार्थों को यथार्थ रूप में जानना।

१२. वैराग्य—इस लोक व परलोक के समस्त भोग्य पदार्थों में आसक्ति न रखना। आसक्ति का अत्यन्त अभाव।

१३. मन का निग्रह—मन का वश में हो जाना।

१४. इन्द्रियदमन—सभी इन्द्रियों को वश में रखना।

१५. तितिक्षा—शीत-उष्ण, सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय आदि द्वन्द्वों में सहनशीलता।

१६. श्रद्धा—वेद-शास्त्र, महात्मा, गुरु, आचार्य, अध्यापक, माता, पिता की हितकारक बातों में ईश्वर के वचनों में, प्रत्यक्ष की तरह विश्वास करना।

१७. क्षमा—अपना अपराध करने वाले को किसी प्रकार भी दण्ड न देने का भाव रखना।

१८. वीरता—कायरता का सर्वथा अभाव (तथा सत्कर्मों की रक्षा निर्बलों की रक्षा करना भी)।

१९. दया—किसी भी प्राणी को दुःखी देखकर हृदय का पिघल जाना।

२०. तेज—श्रेष्ठ पुरुषों की वह शक्ति जिसके प्रभाव से विषय-वासना में लगा हुआ नीच प्रकृति वाला मनुष्य भी प्रायः पापाचरण से हटकर श्रेष्ठ कर्मों में लग जाय।

२१. सरलता—शरीर व इन्द्रियों सहित अन्तःकरण की सरलता।

२२. स्वार्थत्याग—किसी भी कार्य से मृत्युलोक या स्वर्गलोक उभय-लोक के किसी भी स्वार्थ को न चाहना।

२३. अमानित्व—सत्कार, मान और पूजा आदि को न चाहना।

२४. दम्भहीनता—धर्म में ढोंग का न होना, उसे बढ़ा-चढ़ा कर अपनी प्रतिष्ठा के लिए प्रस्तुत न करना।

२५. पिशुनता का त्याग—किसी की कोई भी चुगली या निन्दा न करे।

२६. निष्कपटता—अपने स्वार्थ साधन के लिए किसी भी बात को न छिपाना।

२७. विनय—नम्रता का भाव।

२८. धृति—बड़ी से बड़ी विपत्ति आने पर भी चलायमान न होना (मन को स्थिर रखना)।

२९. सेवा—सभी प्राणियों के हितसिद्धि में तन, मन, धन वाणी से लगे रहना। समस्त जीवों की योग्यतानुसार सुख शान्ति पहुँचाने के लिए निरन्तर मन, वचन, कर्म से निःस्वार्थ भाव से अपनी शक्ति सामर्थ्य के अनुसार क्रियाशील रहना।

३०. सत्संग—सद्ग्रन्थों सन्त महात्माओं, विद्वानों का संग करना।

३१. जप—अपने इष्ट देवता का नाम व मन्त्र का जप करना।

३२. ध्यान—अपने इष्टदेवता का श्रद्धा, विश्वास से प्रेमपूर्वक निरन्तर चिन्तन करना।

३३. निर्वैरता—अपने साथ वैर रखने वालों में भी द्वेष भावना न होना (मन से भी उसका अहित न सोचना)।

३४. निर्भयता—भय का सर्वथा अभाव।

३५. समता—मस्तक, हाथ पैर आदि अपने अंगों की तरह सबके साथ वर्णाश्रम के अनुसार यथायोग्य बर्ताव (व्यवहार) में भेद रखने पर भी (प्राकृतिक शरीर-इन्द्रिय प्रारब्धानुसार भेद होने पर भी) आत्म रूप में (जीव स्वरूप) से समभाव से सभी को देखना व मानना।

३६. निरहंकारिता—मन, बुद्धि, शरीरादि में अहंभाव-मैंपन-का और उनसे होने वाले कर्मों में कर्त्तापन का सर्वथा अभाव।

३७. मैत्री—प्राणिमात्र के साथ प्रेम भाव स्थिर रखना।

३८. दान (क) जिस देश में, जिस काल में, जिसको जिस वस्तु का अभाव हो उसको वह वस्तु बदले में उपकार प्राप्त करने की भावना को त्याग कर फल की भी इच्छा को भी त्यागकर प्रसन्नता से आदर सत्कारपूर्वक ही उचित उपयोगी वस्तु प्रदान करना।

(ख) पारमार्थिक दशा में यज्ञ-यागादि में पूर्णता के लिए भी संकल्पपूर्वक सत्पात्र को उक्त ढंग से ही प्रदान करना।

३९. कर्त्तव्यपरायणता—अपने कर्त्तव्य में तत्पर रहना जो शास्त्र-सम्मत हो, लोकव्यवहारसम्मत हो, प्राणिमात्र के प्रति कल्याणप्रद हो।

४०. शान्ति—इच्छा व वासनाओं का अत्यन्त अभाव और अन्तःकरण में निरन्तर प्रसन्नता का रहना।